Vibha
विज्ञान भारती

मनन के मोती

ए. पी. जे. अब्दुल कलाम

केंद्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा भू-विज्ञान मंत्री
डॉ. हर्षवर्द्धन द्वारा लिखित प्राक्कथन

डॉ. नीरू द्वारा अनुवादित

अरूण तिवारी
द्वारा *सम्पादित*

मनन के मोती

संपादक
प्रो. अरूण तिवारी

विभा द्वारा प्रकाशित, टर्टल बुक्स प्राइवट लिमिटेड के लाइसेंस के तहत

सभी अधिकार सुरक्षित। प्रकाशन का कोई हिस्सा पुनः उत्पन्न नहीं हो सकता है, पूरे या हिस्से में, या संग्रहीत किसी पुनर्प्राप्ति योग्य प्रणाली, या संचारित किसी भी रूप में या किसी भी तरह से फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, रिकॉर्डिंग, या अन्यथा प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना।

अनुमति के बारे में जानकारी के लिए, लिखें:
टर्टल बुक्स प्राइवट लिमिटेड
B-48, सेक्टर 59, नोएडा-201301
ई-मेलः info@turtlepub-in

प्रथम संस्करण, २०१६

विषय-वस्तु

	प्राक्कथन	v
	परिचय	vii
	संपादक के बारे में	ix
1.	नारियल का बगीचा	1
2.	साँप और सीढ़ी	9
3.	आशा का दुस्साहस	16
4.	सांसारिक चक्कर	23
5.	कोवा से तितली	30
6.	ईश्वर का साधन	41
7.	विकसित भारत का सपना	50
8.	उन्नति	57
9.	पुनर्जागरण नायक	64
10.	विश्व एक मंच है	73
11.	परचिन्ता के दार्शनिक	80
12.	श्रेष्ठता	88
	जीवनवृत्त	91
	डॉ कलाम के प्रमुख प्रोजेक्ट	93

प्राक्कथन

भारतीय सभ्यता, मानव मस्तिष्क की प्रतिभा, मानव मूल्यों की गहनता एवं महान परिवार व्यवस्था पर आधारित सामुदायिक जीवन की महानता जैसे अवर्णनीय है, उसी प्रकार डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के व्यक्तित्व की भव्यता भी हमें अवाक कर देती है। भारत मानवता को सदा चकित एवं सम्मोहित करता आया है, अतिप्राचीन काल से समयहीन/अंतहीन शाश्वतता तक स्वप्नों एवं कल्पनाओं की प्रेरणा बना हुआ है और ऐसे ही डॉ. कलाम हैं जो इस संसार में अपनी भौतिक देह के त्याग के बाद भी लाखों–करोड़ों भारतीय युवाओं के लिए प्रेरणा–स्रोत बने हुए हैं।

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि विज्ञान भारती डॉ. कलाम के संस्मरण 'मनन के मोती' का प्रकाशन कर रहा है जिसका संकलन उनकी पाँच पुस्तकों के सह–लेखक प्रो. अरुण तिवारी द्वारा किया गया है। यह पुस्तक निःसन्देह डॉ. कलाम के मस्तिष्क से उद्‌भुत शुद्ध स्फटिक है, प्रासंगिकता की दृष्टि से समय की सीमाओं से परे एवं महत्तव की दृष्टि से अतुलनीय है। मैंने डॉ. कलाम को निकटता से देखा है एवं उनके विशेष रूप से युवाओं को प्रोरित करने के उद्‌देश्य से किए गए लेखन को मैं पढ़ता रहा हूँ। एक चिकित्सक होने के नाते मैं डॉ. कलाम के चरित्र निर्माण से राष्ट्र निर्माण के विचार से पूरी तरह से सहमत हूँ।

एक सफल व्यक्ति के निर्माण की अपेक्षाएं एक सफल राष्ट्र के निर्माण के लिए जो अपेक्षित है, उससे भिन्न नहीं होती। भारत आर्थिक उन्नति के मुहाने पर खड़ा है। हमने जिन वस्तुओं की कल्पना नहीं की, वे लोगों के एक बड़े वर्ग को उपलब्ध हो सकती थीं और यदि हम .....। एक अरब स्वस्थ एवं केन्द्रित लोग एक करिश्मा हैं परन्तु एक अरब अस्वस्थ, प्रेरणा रहित लोग एक विपत्ति हो सकते हैं। हम इस जनसंख्या को एक सम्भावना अथवा एक विपदा में बदलने वाले हैं?

यह पुस्तक डॉ. कलाम के इस संदेश को बहुत दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करती है कि एक पवित्र देह, एक अनुशासित मस्तिष्क एवं निराश हुए बिना किए गए प्रयास भीतरी उर्जा को इस प्रकार से सक्रिय कर देते हैं कि आप अपनी अधिकतम क्षमता से काम कर सकते हैं। भारत को ऐसे वैज्ञानिकों की आवश्यकता है जो केवल तथ्यों का औसतमान निकालने वाले और सूचनाओं को प्रक्रमित करने वाले न हों अपितु जो अपने लोगों की समस्याओं को समझ सकें और वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय कौशलों के प्रयोग से अच्छे समाधान प्रदान कर सकें। मैं इस पुस्तक को उस महाकुँजी के रूप में देखता हूँ जो युवा मस्तिष्कों के लिए नई सम्भावनाओं के द्वार खोलेगी एवं उन्हें भारत को एक स्वस्थ, समृद्ध एवं प्रसन्नचित्त देश बनाने की प्रेरणा प्रदान करेगी।

डॉ. हर्षवर्धन
कैबिनेट मंत्री, भारत सरकार

परिचय

डॉ. ए पी जे अब्दूल कलाम हाल ही की पीढ़ियों में सर्वाधिक सम्मानजनक राष्ट्रपति/शासनाध्यक्ष थे। सिद्धांतप्रिय और करिश्माई व्यक्तित्व के धनी डॉ. कलाम को अपने देश के करोड़ों लोग उतना ही चाहते थे जितना विदेशों में उनकी प्रशंसा होती थी एवं ख्याति थी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनकी जीवन कथा एवं कैरियर को जानने में लोगों की अत्यधिक रूचि एवं उत्साह है। रॉकेट विज्ञानी, लेखक, विद्वान, अध्यापक, स्वप्नदृष्टा एवं नेता के रूप में भारतीय समाज को उनके योगदान एवं एक छोटे से कस्बे में एक साधारण पृष्ठभूमि से प्रारम्भ से एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व तक की यात्रा पर व्यापक रूप से लिखा गया है।

उस महान व्यक्ति के निजी विचारों एवं उनकी प्रेरणाओं की जानकारी उतनी ही सीमित है। राष्ट्रभर में डॉ. कलाम की अनगिनत तस्वीरें प्रदर्शित हैं जिनमें उनकी एक दयावान एवं आश्वस्त करने वाली छवि दिखाई देती है। परन्तु चरित्र/व्यक्तित्व की तस्वीर एक पूर्णतः भिन्न विषय है।

ऐसा नहीं है कि भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय राष्ट्रपति संकोची व्यक्तित्व के थे अथवा उनके जीवन का, जैसा कि कुछ नेताओं का होता है, कोई गोपनीय पक्ष था। डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम को पूर्णतः समझने में कठिनाई केवल इसलिए है कि इस महान भारतीय व्यक्तित्व के अनेक अच्छे पहलू हैं। डॉ. कलाम के साथ तीन दशक से भी अधिक समय तक काम करने के बाद भी मैं स्वयं को उनसे सीखते और उनके विषय में जानते हुए पाता हूँ।

डॉ. कलाम की उदारता एवं व्यापकता भी उनके व्यक्तित्व में दिखाई देने वाले विरोधाभासों का कारण हैं। वे शाँतिदूत थे, ठीक जैसे वे भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा के सुदृढ़ हिमायती थे। वे पक्के देशभक्त थे जो दूसरे देशों के लोगों तक भी अपनी बात उतनी आसानी से पहुँचा पाते थे जितनी कि अपने देश के लोगों तक। डॉ. कलाम यद्यपि देश के अग्रणी वैज्ञानिक थे परंतु वे परमात्मा में अपनी आस्था को सार्वजनिक रूप से निःसंकोच व्यक्त करते थे।

यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी भी विद्यार्थी को डॉ. कलाम के जीवन का अध्ययन करने से लाभ हो सकता है। उनके कैरियर का कहानी ही एक युवा मस्तिष्क को उद्वेलित करने के लिए पर्याप्त है। भारत के जन्म ले रहे अंतरीक्ष कार्यक्रम में एक छोटे, आवाज़ करने वाले रॉकेट को बनाने से लेकर भारत के पहले उपग्रह प्रक्षेपण वाहन, एसएलवी–3 के सृजन तक उनकी भागीदारी की गाथा अत्यन्त प्रभावशाली है। इंटिग्रेटिड गाइडिड मिसाइल कार्यक्रम में उनके नेतृत्व और देश के परमाणु विकास कार्यक्रम का मार्गदर्शन करने की कहानियाँ भी अत्यन्त रोचक एवं पढ़ने योग्य हैं। परंतु उनकी निजी यात्रा के पाठ उनके शानदार कैरियर के विवरण से कहीं अधिक शक्तिशाली हैं।

'मनन के मोती' में मैंने दक्षिण भारतीय तीर्थ स्थान से राष्ट्रपति भवन तक की उँचाई पर पहुँचने की यात्रा का वर्णन करते हुए डॉ. कलाम की विद्वता एवं स्वप्न को उजागर करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में वे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरे हैं जो अपने समय से कई दशक आगे था और जिनकी विस्मित एवं प्रेरित करने की क्षमता सदैव बनी रही तथा जो वस्तुतः हमारे साथ अपने अंतिम क्षण तक विद्यार्थियों को प्रेरित कर रहे थे।

इतिहास की अन्य महान हस्तियों के समान ही डॉ. कलाम के भी विस्मयकारी जीवन के प्रत्येक अंश अथवा उनकी समस्त उपलब्धियों का उल्लेख कर पाना असम्भव होगा। उनके समस्त विचारों, मान्यताओं और दर्शन को एक ही पुस्तक में संजोने का प्रयास करना निरर्थक होगा। ऐसा करते हुए सामग्री ही अत्यधिक हो जाएगी।

'मनन के मोती' में एक आदर्श व्यक्ति द्वारा जिए गए एक भरपूर जीवन का सार है। डॉ. कलाम ने पन्द्रह वर्ष की आयु में पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। तीस वर्ष की आयु तक वे स्वयं को समाज में स्थापित कर चुके थे और चालीस वर्ष तक पहुँचते न पहुँचते वे स्वयं को सांसारिक आकर्षणों से मुक्त कर चुके थे। मध्य वय में उनकी समस्त उर्जा सुदृढ़ता से संगठित हो चुकी थी और अपने जीवन के लगभग पूर्ण अंतिम दशक में वे एक उँचे धरातल पर थे। तिरासी वर्ष की आयु में इस संसार को त्यागने से पूर्व उन्होंने हमारी धरती को जीवन योग्य बनाने का आह्वान किया था। उनके जीवन का संदेश यह है कि एक बेहतर विश्व के निर्माण का कार्य कभी समाप्त नहीं होता क्योंकि यह जितना एक भौतिक कर्तव्य है, उतना ही एक भीतरी खोज है।

मुझे आशा है कि इन पृष्ठों में मैं लोगों के राष्ट्रपति के सार तत्व को पृथक् कर पाने में सफल रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठक निजी विकास, नेतृत्व एवं उद्देश्यपूर्ण अस्तित्व से संबंधित उनके सूक्ष्म विचारों से बहुत कुछ सीख पाएंगे। डॉ. ए पी जे अब्दुल कलाम द्वारा इन सभी वर्षों के दौरान हमारी बातचीत एवं लेखन में प्रदान की गई सीख उतनी ही प्रभावशाली है जितना कि एक प्रबुद्ध व्यक्तित्व के रूप में उनका उदाहरण। इन दोनों ही से हमारे राष्ट्र के युवा प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। क्या हम स्वयं को हमें और अधिक सार्थक एवं सम्पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर करने वाले डॉकलाम के विचारों में निहित सम्भावनाओं के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं।

अरुण तिवारी
हैदराबाद
सितम्बर, 2016

संपादक के बारे में

अरूण तिवारी ने जी. बी. पंत विश्वविद्यालय से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर की उपाधि ली और वर्ष 1982 में डॉ. ऐ.पी.जे. कलाम के अधीन मिसाइल वैज्ञानिक के रूप में हैदराबाद के डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरेटरी से जुड़ गए।

वर्ष 1992 में डीआरडीओ के प्रमुख बनने के बाद डॉ. कलाम ने रक्षा प्रौद्योगिकी में निवेश का लाभ आम आदमी तक पहुँचाने के लिए उन्होंने रक्षा प्रौद्योगिकी का नागरिक प्रयोग करने का फैसला किया और इस परियोजना के निदेशक के रूप में प्रो. तिवारी को नियुक्त किया। वर्ष 1996 में प्रो. तिवारी ने हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. बी. सोमा राजू के साथ मिलकर भारत का पहला कोरोनरी स्टेंट का विकास किया जो कलाम–राजू स्टेंट के नाम से जाना गया। इससे केअर फाउंडेशन और बाद में केअर हॉस्पिटल के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राष्ट्रपति कलाम के दल के सदस्य के रूप में अरूण तिवारी ने टेलिकॉम्यूनिकेशंस कंसलटेंट इंडिया लिमिटेड (टीसीआइएल) के पैन अफ्रीका नेटवर्क के प्रथम श्रृंखला की स्थापना की। यह नेटवर्क आज अफ्रीका महादेश के विश्वविद्यालयों एवं अस्पतालों को उनके भारतीय भागीदारों के साथ सम्पर्क में रखता है।

वर्ष 1999 में अरूण तिवारी ने डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की आत्म कथा विंग्स आफ फायर लिखी। यह किताब आधुनिक उत्कृष्ट साहित्य साबित हुई जिसके 30 संस्करण आ चुके हैं और इसकी पंद्रह लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। इसका 18 भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। उनकी नवीनतम किताब ट्रांसेंडंस विद डॉ. कलाम तथा एपीजे अब्दुल कलामः अ लाइफ हैं, जो डॉ. कलाम की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई, और ये उनकी अभी सबसे ज्यादा बिकनेवाली किताबें हैं।

अरूण तिवारी वर्तमान में अफ्रीका के छोटे किसानों को भारतीय उपभोक्ताओं के लिए अधिक उत्पादन करने का लाभ पहुँचाने के लिए अफ्रीका–भारतीय परियोजना की रूपरेखा तैयार करने में लगे हुए हैं। इस बहु–सरकारी परियोजना का उद्देश्य अफ्रीका के उपसहारा क्षेत्र में भारतीय प्रौद्योगिकी एवं वित्तीय समावेशी नीतियों द्वारा गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन तथा मध्यम स्तरीय अर्थव्यवस्था का विकास करना है।

१

नारियल का बगीचा

"आप अपने वक़्त का ख़याल रखें,
कैलेंडर को वर्ष का ख़याल रखने दें।"

हमारा जीवन कैलेंडर के अनुसार चलता है। हम इस बात का इंतजार करते रहते हैं और दिन गिनते रहते हैं कि कोई ख़ास दिन आने में अभी कितना दिन बाकी है या कौन-सा ख़ास दिन गुजरे कितने दिन हो गये। ऐसा देखने में आता है कि पुराने समय में कैलेंडर बनाने वाले लोगों पर उनके भौगोलिक स्थान का बड़ा प्रभाव रहा है। ठंडे जलवायु वाले देशों में वर्ष की अवधारणा का निर्धारण वहाँ के मौसम से हुआ है। ऐसे देशों में वर्ष का निर्धारण अमूमन शरद ऋतु की समाप्ति से तय हुआ है। गरम देशों में जहाँ मौसम का पता ठंडे प्रदेशों की तरह नहीं होता, वहाँ समय की गणना का आधार चंद्रमा को बनाया गया। इस्लाम के हिजरी कैलेंडर की शुरुआत सउदी अरब के उष्णकटिबंधीय इलाकों से हुई है। इस कैलेंडर में समय की गणना अभी-भी चंद्रमा की गति के अनुसार होती है।

हिजरी कैलेंडर के अनुसार, मैं इस धरती पर वर्ष 1350 के छठ्वें महीने के दूसरे दिन आया। इसका मतलब हुआ कि मेरा जन्म 15 अक्टूबर, 1931 को वृहस्पतिवार के दिन हुआ। मैं अपने माता-पिता जैनुलआब्दीन और आयशाम्मा की तीसरी संतान था और दूसरा बेटा। मेरे पिता एक धार्मिक-प्रवृत्ति के इनसान थे और मुल्क-ए-हिंदुस्तान के प्रति राष्ट्रीयता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उन्होंने महान भारतीय शिक्षाविद एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेता 'अबुल कलाम आजाद' के नाम पर मेरा नाम 'अब्दुल कलाम' रख दिया। मेरे पिता मानते थे कि मैं उनका भाग्यशाली पुत्र हूँ क्योंकि मेरे जन्म के तुरंत बाद ही वे स्थानीय मस्जिद के इमाम बन गये थे।

जैसा कि उन दिनों होता था, मेरा जन्मथ मेरे पैतृक घर पर ही हुआ था। मेरा पैतृक घर पवित्र शहर रामेश्वंरम् में साधारण और पारंपरिक ढंग से बना था। खपरैला-बरामदा वाले इस घर के सामने ही गली थी। हमारा घर प्रसिद्ध रामनाथस्वाामी मंदिर से थोड़ी ही दूरी पर था।

मेरा शहर कमोबेश पंबन द्वीप के बीच में है। तीस किलोमीटर का यह क्षेत्र पाल्कर खाड़ी से दो किलोमीटर की दूरी पर प्रायद्वीपीय भारत और श्रीलंका के बीच है। पंबन और रामेश्वरम् द्वीप की दो मुख्यर बसावटें (आबादियाँ) हैं। तात्पर्य यह है कि ये दोनों जीवन के दो प्रमुख भाग : श्रम और आध्यात्मिक रीति-रिवाज का प्रतिनिधित्व करती हैं। पंबन मछुआरों का गाँव और एक बंदरगाह है जो द्वीप के पश्चिमी छोर पर स्थित है। रामेश्वमरम में प्रवेश करने का यह मुख्य स्थान है जो कि दोनों बसावटों में बड़ा है और द्वीप के पूर्वी क्षेत्र में पाल्क खाड़ी की अनदेखी करता है।

पंबन द्वीप में एक और कस्बा है- धनुषकोडी, जब मैं छोटा था तब धनुषकोडी द्वीप के सुदूर दक्षिणी छोर के निकट था, जहाँ की जमीन श्रीलंका की ओर धीरे-धीरे पतली होती गयी थी। यद्दिप 1964 में रामेश्वरम् तूफान (चक्रवात) आने तक यहाँ कोई नहीं रहता था लेकिन भगवान राम का कोदंडाराम स्वामी का मंदिर वहाँ था। धनुषकोडी में 23 दिसंबर को आए प्रलयकारी (7.6 मीटर ऊँचे तरंगों वाले) तूफान ने पूरे कस्बे को विनष्ट कर दिया लेकिन यही एक ऐतिहासिक भवन बचा रहा।

सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् चार धामों में से एक है, जहाँ हजारों हिन्दू हर साल तीर्थ के लिए आते हैं। रामेश्वरम् का अर्थ है, 'राम का भगवान'। संस्कृत में इसका अर्थ है- शिव का विशेषण, जो रामनाथस्वामी मंदिर के पीठासीन देव हैं। राम, भगवान विष्णु के सातवें अवतार माने जाते हैं। उन्होंने राम-रावण युद्ध के दौरान किए गये किसी भी तरह के पापकर्म से मुक्ति के लिए यहाँ भगवान शिव की आराधना की थी। श्रीलंका की वह रणभूमि यहाँ से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर है।

भारत के अन्य भागों की तरह ही पंबन भी खासतौर पर नये धार्मिक विचारों का स्वागत करने को उत्सुक रहता है। इस द्वीप पर मलिक काफूर के साथ इस्लाम का आगमन हुआ। काफूर दिल्ली सल्तनत के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी का हिजड़ा दास था जो बाद में उनकी सेना का सेनापति बना। मलिक काफूर दक्षिण भारत में 1294 और 1316क के बीच अपने तीन सैन्य-अभियान में से एक के दौरान रामेश्वरम् या था। इन अभियानों के कारण तकरीबन आधे दशक से अधिक दिनों तक चलने वाले मदुरई सल्तदनत का पराभव हो गया लेकिन इस्लाम अभी-भी मौजूद है।

सन् 1795 में रामेश्वरम् का शासन मद्रास प्रेसीडेंसी से कटकर सीधे ब्रिटिश ईस्टन इंडिया कंपनी के हाथों में चला गया। ब्रिटिश शासन के दौरान द्वीप में ईसाई धर्म ने जगह बनाई। इसके समवर्पित अनुयायी इस पाल्कि खाड़ी के छोटे लेकिन पवित्र स्थाधन पर रह रहे समान रूप से समर्पित हिन्दुओं और मुस्लिमों में शामिल हो गये।

> "इस धरती पर जन्म लेने वाले प्रत्येक बच्चे को विशेष सामाजिक-आर्थिक और भावनात्मक वातावरण के अनुसार विरासत में कुछ विशेषताएँ हासिल होती हैं और उसकी शिक्षा-दीक्षा एक निश्चित ढंग से उसके अभिभावक या प्राधिकारी द्वारा की जाती है।"

मैं भाग्याशाली था कि मेरी परवरिश एक ऐसे स्थान पर हुई जहाँ दुनिया के तीन सबसे बड़े धर्मों के लोग एक साथ हँसी–खुशी से रहते हैं। रामेश्वरम् के मेरे तीन अभिन्नक मित्र– रामनाथ शास्त्री, अरविन्दन और शिवप्रकाश कट्टरवादी हिन्दूं ब्राह्मण परिवार से थे, लेकिन मेरे साथ ऐसे खेलते थे मानो हम एक ही परिवार के बच्चे हों। मुझे रामेश्वरनाथस्वामी मंदिर के प्रांगण में बैठकर इसके पत्थरों की वैभवशाली नक्काशी की तारीफ करने और मंदिर में होनेवाली प्रार्थना सुनने में खुशी होती थी। इसी तरह पास के कैथोलिक चर्च में होने वाले सामूहिक उपदेश भी कभी–कभी सुना करता था।

रामेशरम में सभी धर्मावलम्बियों की आस्था का सभी लोग आदर करते थे, साथ ही इस द्वीप पर प्रत्येक समुदाय का 'धार्मिक–उत्सव' सबका 'साझा–उत्सव' हुआ करता था। हर साल मनाया जाने वाला 'श्री सीताराम कल्याभणम महोत्सभव' के लिए मेरे पिता और मुझसे 14 साल बड़ा मेरा भाई माराकयर, प्रतिमाओं को तालाब के बीचो–बीच ले जाने के लिए विशेष प्लेटफार्म वाली नाव 'रामतीर्थ' की व्यवस्था करते थे।

यहाँ मेरे पिता और भाई, खुले समुद्र के मुस्लिम लोग अपने हिन्दू भाइयों को प्रार्थना के लिए छोटे तालाब में नाव ले जाने में मदद करते थे। जैनुलआब्दीन और माराकयर सरल सचाई को समझते थे : समुद्र, नदियों, तालाबों, झीलों और झरनों के अलग–अलग नाम हैं और उनका अलग–अलग आकार है। लेकिन इन सबमें ही पानी होता है और हमारी नाव इन सबके सतह पर समान तरीके से ही तैरती है। इसी तरह धर्म के विभिन्ना रूप हैं लेकिन सभी में सचाई है और उनमें लोगों का अध्याात्मिक जीवन बसा है।

हालाँकि लगभग साल–भर गर्म मौसम तथा मैत्रीपूर्ण लोगों वाला यह द्वीप खुशियों से भरा था लेकिन पंबन पूर्ण नहीं था– यहाँ रहने वाले लोगों का समुदाय एक–दूसरे के लिए किसी भी प्रकार की मुसीबत पैदा नहीं करते थे। मेरे जीवन के शुरुआती दिनों में तथा स्वतंत्रता से पूर्व यहाँ के लोगों के लिए भी आर्थिक–कठिनाइयों के दिन थे। सन् 1930 का विशाल मंदी का दौर, औपनवेशिक सरकार का भारी कर, ब्रिटिश सरकार की संरक्षणवादी नीतियों ने भारत के लोगों पर भारी बोझ लाद दिया था। भारत के दूसरे हिस्सों के साथ ही साथ पंबन के लोग भी इन आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहे थे। इस मुश्किल घड़ी में हालाँकि द्वीप के लोगों के समक्ष खाने पीने और अन्य वस्तुओं की दिक्कत जरूर थी लेकिन उनके बीच रोजमर्रा के मामलों को निबटाने के लिए कभी–भी परस्पर–संवाद की कमी नहीं रही।

मैं इस तरह के अंतरधार्मिक संवाद का बचपन से ही साक्षी रहा हूँ। मेरे घर पर तमाम लोगों की होने वाली नियमित बैठकों की याद अभी–भी मेरे जेहन में है। रामनाथस्वांमी मंदिर के मुख्य पुजारी माननीय पक्षी लक्ष्मण शास्त्रीगल, ईसाई समुदाय के नेता फादर बोदल और मेरे पिता जैनुलआब्दीन प्रत्येक कुछ महीनों के अंतराल पर द्वीप के लोगों की समस्यांओं पर विचार–विमर्श करने के लिए बैठकें करते थे। कुछ कारणों से मैं इन बैठकों की खास बातों को लिखा करता था जैसेकि मुझे मालूम था कि सौहार्दपूर्ण वातावरण में इन लोगों का आपस में बाचीत करना और साथ में छाछ या चाय पीना किसी न किसी रूप में महत्वआपूर्ण था। हमारे छोटे से समाज की

समस्याओं को सुलझाने के लिए उनका मिल बैठकर बातचीत करना स्वाभाविक था– एक तरह से यह नियमित रूप से होने वाला एक कार्यक्रम था। उन बैठकों का पाठ था– एक साथ रहें। 21वीं सदी के पूर्व के वर्षों में अंतरआस्था वार्ता कभी बहुत प्रासंगिक नहीं थी। कुछ स्थानों पर धर्म के बीच विभाजन से दरार पैदा हो गई थी और परस्पर–मतभेद के कारण अक्सर हिंसा भड़क उठती थी। इन मामलों में सहिष्णुतता की कमी नहीं थी बल्कि आदर का अभाव था। माननीय पाक्षी लक्ष्मण, फादर बोदल और मेरे पिता एक–दूसरे की आस्था का सम्मान करते थे। यदि लोग एक–दूसरे की आस्था और मत का सम्मान करें तो सहिष्णुमता की जरूरत नहीं है। और इस सम्मान के साथ मतभेद हमारे बीच जगह पा ही नहीं सकता।

पंबन में आर्थिक और आध्याात्मिक विश्वास निरंतर बना रहा। भारत के अधिकांश भागों में लोगों की आय का मुख्य साधन कृषि है। पंबन के लोगों के मामले में ऐसा कभी नहीं रहा। खेती के लिए द्वीप की बलुई मिट्टी उपयुक्तं नहीं है। इस तरह इस जमीन से अंजीर और नारियल के अलावा बहुत कम चीजें ही पैदा की जा सकती हैं। द्वीप की अर्थ–व्यवस्था् सामुद्रिक उत्पादों– मछली और सीप तथा तीर्थयात्रियों को बुनियादी सुविधाएँ तथा रसद प्रदान करने पर निर्भर थी।

> “आप समुद्र के पास खड़े होकर उसके पानी को निहारते रहने से समुद्र पार नहीं कर सकते।”

तब भी, मेरे परिवार को कृषि से कुछ मदद मिल जाती थी। हमारे घर से कोई छह किला. मीटर दूर पिता जी का एक नारियल का बगीचा था। एक समय यह मेरे परिवार के लिए आय का मुख्य स्रोत हुआ करता था। इसके बाद मेरे पिता ने व्यापार में हाथ आजमाया। हालाँकि यह प्रतिदिन की सचाई है कि मेरे बचपन के ज्यादातर दिन अभावों में गुजरे। और मेरे माता–पिता को मुझे सुविधाजनक बचपन देने के लिए बहुत मशक़्कत करनी पड़ती थी।

अपने परिवार की जरूरतें पूरी करने के लिए जैनुलआब्दीन और आयशाम्मा कड़ी मेहनत से कभी घबराते नहीं थे। मैं सुबह–सवेरे उठकर देखता था कि सूरज उगने से पहले फज्र की नमाज पढ़ने के बाद वे दोनों तुरंत काम पर लग जाते थे। जैनुलआब्दीन नारियल के बगीचे की ओर चल देते थे और मैं अलस्सुबह उनके घर से बाहर कदम रखने की नकल उतारा करता था। मैं सुबह की ताजा हवा में खेला करता था और समुद्री–पक्षियों का कलरव सुना करता था। मेरे पिता कहा करते थे कि “जीवन में सच्ची सफलता के लिए किसी जीवधारी को आजादी देना है”, जिससे तुम्हें खुशी मिलती है।

वक़्त के साथ जैनुलआब्दीन के दिन लौट आये और उन्हें कामयाबी भी मिली। जब मैं तकरीबन छः साल का था तब उन्होंनने धनुषकोडी और रामेश्वरम से तीर्थयात्रियों को लाने और ले जाने के लिए एक लकड़ी की नाव बनाने की परियोजना बनाई। उन्होंने अपने एक रिश्तेचदार अहमद जलालुद्दीन के साथ समुद्र तट पर नाव बनाने का काम शुरू किया। बाद में अहमद जलालुद्दीन की शादी मेरी बड़ी बहन जोहरा के साथ हुई। दोनों व्यक्तियों ने परंपरागत ढंग से तख्तारबंदी–विधि से नाव बनाया जिसमें एक नीचे के मजबूत फ्रेमवर्क पर पटरों के किनारों को मिलाकर जोड़ा जाता है। इस ढंग से बनाई गयी नाव भारी सामान ढोने के काम आ सकती है।

मैं समुद्र के किनारे अपने पिता और अहमद दोनों को जलती लकड़ी की गर्मी में नाव को बनाते हुए बैठकर ध्यान से देखा करता था। मेरी बचपन की आँखों में यह एकदम नाव के कंकाल की तरह दिखाई पड़ता था। और जैसे ही लकड़ी के पटरे इस पर लगाए गये यह एकदम नाव में बदल गई जो समुद्र में उतरने को तैयार थी। मैंने देखा कि जानकारी और लग्नपूर्वक कोशिश की बदौलत सामान्य सामग्री से भी बहुत उपयोगी वस्तु बनाई जा सकती है। लकड़ी के टुकड़ों का नाव में तब्दील होना आश्चर्यजनक था। मैंने यह भी जाना कि एक नाव बनाने वाले को इसके लिए प्रयुक्त सामग्री के गुणों की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। मेरे पिता ने बताया कि कैसे लकड़ी का घर्षण प्रतिबल इसकी कठोरता और घनत्वो के अनुसार बदलता है। उन्होंने यह भी बताया कि अगर लकड़ी में ताजा पानी या सामुद्रिक जैविक पदार्थ अंदर चला जाए तो लकड़ी कैसे खराब हो जाती है।

नाव का व्यापार बहुत फला-फूला। उन दिनों मैं बस में कंडक्टर की तरह नाव के तीर्थ यात्रियों से मिले भाड़े के रूप में सिक्कों को जमा किया करता था। तब मैं नाव की यात्रा के दौरान राम के द्वारा अपनी वानर-सेना की मदद से यहाँ से लेकर श्रीलंका तक पुल बनाने की कहानी सुना करता था। कैसे श्री राम श्रीलंका से सीता को वापस लाये और रावण की हत्या के लिए रामेश्वरम् में रुककर पश्चाताप किया। और कैसे जब श्री राम ने विशाल शिवलिंग लाने के लिए हनुमान को उत्तर दिशा में भेजा और जब वे समय पर शिवलिंग नहीं ला पाये तो पूजा में हो रही देरी को देखते हुए सीता ने कैसे अपने हाथों से लिंग बनाया।

इन कहानियों के अलावा कई तरह की कहानियाँ मेरे आस-पास विभिन्न भाषाओं और रूप में तैरती रहती थीं क्योंकि नाव से देश-भर के लोग यात्रा करते थे। मैंने बहुत कम उम्र में ही समझ लिया था कि वास्तव में हमारा देश बहुत विशाल है। मैंने यह भी महसूस किया था कि हालाँकि देश के अलग-अलग भागों में रहने वाले लोग एक-दूसरे से एकदम भिन्न हैं और वे अलग-अलग भाषा बोलते हैं फिर भी उनमें कुछ ऐसा आवश्यक गुण है जो सबको आपस में बाँधकर रखता है। इसे परिभाषित करना मुश्किल है लेकिन मैंने स्पष्ट तौर पर यह महसूस किया कि यह एक खास भारतीय विशेषता है जो देश के सभी लोगों में पाई जाती है। सभी भारतवासियों के साथ, मैं भी यह देख सकता हूँ कि हम सब में अपनी गौरवशाली संस्कृति के प्रति एक गहरा लगाव है जो हमें स्थान और उद्देश्य का भान कराता है। भारत में हजारों साल की परंपराओं को जीवित रखा गया है। कोई भी व्यक्ति जिसे अपने इतिहास, मूल और संस्कृति की जानकारी न हो, वह उस पेड़ के समान है जिसकी जड़ें नहीं होतीं।

> “एक शिक्षक बच्चों में सृजनात्मनक अनुभूतियों और ज्ञान को जगाता है”

जब मैं पाँचवीं कक्षा में पढ़ रहा था तो मेरे शिक्षक शिवा सुब्रह्मण्यम अय्यर का मेरे ऊपर काफी प्रभाव पड़ा। हमारे शिक्षक हमें समुद्र तट पर यह दिखाने ले जाते थे कि चिड़िया कैसे उड़ती है। एक दिन लहरों पर बाज को कलाबाजी करते देखकर ही वैमानिकी को अपना कॅरियर बनाने की मुझे प्रेरणा मिली। एक दिन अय्यर साहब ने चिड़ियों की उड़ान से संबंधित एक डायग्राम ब्लैकबोर्ड

पर बनाया। इसमें उन्होंने पक्षी के डैनों, पूंछ और सिर को दिखाया था। उन्होंने बड़े विस्तार से समझाया था कि कैसे चिड़िया उड़ने के लिए डैनों को फड़फड़ाकर हवा को ठेलकर डड़ान बल का निर्माण करती है। उन्होनें कक्षा में इस बात को भी बताया कि कैसे पक्षी उड़ते वक़्त दिशा बदलने के लिए अलग-अलग कोणों से डैनों को झुकाते हैं।

जब उन्होंने पूरे कक्षा से पूछा कि क्या सभी ने समझ लिया कि पक्षी कैसे उड़ते हैं? मैं खड़ा हो गया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मेरे सहपाठियों ने भी कहा कि उनके समझ में भी नहीं आया। हमारे शिक्षक गुस्सा नहीं हुए। वे कक्षा के सभी बच्चों को समुद्र-तट पर ले गए और वहाँ उन्होंने उड़ती चिड़ियों को दिखाया। उस दिन मैंने महसूस किया कि एक चिड़िया अपनी जीवन-शक्ति और आत्म-बल से संचालित होती है तथा अपनी इच्छा के अनुसार अपनी प्रेरणा से उड़ती है। श्री अय्यर का पाठ केवल चिड़िया के उड़ने को समझाने भर का पाठ नहीं था। मुझे बहुत पहले ही चिड़िया के अस्तित्व और आकाश में उसके पहुँचने का पता चल गया था। मैंने इसे मन में बिठा लिया और उसी क्षण से मैं उड़ान में रुचि लेने लग गया।

सन् 1942 में बंगाल की खाड़ी के ऊपर एक बहुत ही शक्तिशाली तूफान उठा। पामबन द्वीप में मूसलाधार बारिश और कोई 160 किलोमीटर की गति से तूफान आया। मेरे पिताजी के नारियल के बगीचे के पेड़ उखड़ गए और उनकी नाव भी क्षतिग्रस्त हो गई। हम सब रो रहे थे लेकिन मेरे पिता शांत थे। उन्होनें बस इतना ही कहा, "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" (हम खुदा के पास से आए हैं और हमें उन्हीं के पास लौटकर जाना है।) जब मैंने इसका मतलब उनसे पूछा तो उन्होंने जवाब दिया- "इस दुनिया में अक्सर ऐसा होता है कि आदमी कुछ खोता है या आपदा का शिकार हो जाता है। हमें अपने दुर्भाग्य पर अपने आप को यह कहकर छोड़ देना चाहिए कि यह खुदा की मर्जी है। ईश्वर ने इस संसार की रचना मानवता की परीक्षा लेने के लिए की है। यहाँ पाना और खोना, दोनों मनुष्य् के लिए परीक्षा के रूप में तय है। इसलिए जब मनुष्य् कुछ पाता है तो उसे खुद को ईश्वर का कृतज्ञ (फरमाबरदार) बंदा साबित करना चाहिए। और जब वह कुछ खोता है तो उसे धैर्य रखना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, केवल वे ही लोग ईश्वर की परीक्षा में पास होते हैं।"

इस हानि से बिना व्याकुल हुए मेरे पिता नाव को फिर से बनाने के लिए सागौन की लकड़ी ले आये। जब मैंने उनको काम करते देखा तो जाना कि "नाव बनाने के लिए सागौन की लक. ड़ी का इस्तेमाल करने की खास वजह यह है कि इसमें सफेद चींटी नहीं लगती"। लकड़ी सफेद चीटियों का भोजन है। एक बार जब किसी लकड़ी में ये लग जाती हैं तो लकड़ी तेजी से खत्मा होने लगती है। लेकिन सागौन का कड़वा स्वाद सफेद चीटियों को पसंद नहीं आता। सागौन की सुरक्षा के लिए प्रकृति ने सागौन को कुछ ऐसे गुण दिए हैं जिससे कीटाणु उससे दूर ही रहते हैं। प्रकृति के इस किताब से सबक लेकर मैंने भी निर्णय लिया कि "मैं अपने में ऐसे गुण विकसित करूँगा जिससे हमारे दुश्मन हमसे दूर ही रहें"।

अपने पिता के द्वारा फिर से नाव बनाने की कठिन मेहनत को देखकर मैंने भी अपने जीवन का पहला काम इमली के बीज बेचना शुरू किया। द्वितीय विश्व-युद्ध के कारण वस्त्र, कागज, जूट

उद्योग पर भारी दबाव पैदा कर दिया था जिस कारण बाजार में इमली के बीज की माँग बढ़ गई थी। मैं घर-घर जाकर बीज जमा करता था और उसे व्यापारी की दुकान में बेच देता था। इस दिन-भर के काम से मुझे एक आना मिल जाता था जो कि उस समय एक वक़्त के भोजन के लिए काफी होता था। मैं गर्वपूर्वक इस कमाई के सिक्के को अपनी माँ को सुरक्षित रखने हेतु दे देता था। मेरे इस छोटे से काम से मेरे पिता खुश थे। मैं चुपके-से सुना करता था कि वह मेरी माँ से मेरी तारीफ किया करते थे। वे कहा करते थे कि कठोर परिश्रम, पैसों की बचत और आत्म-नियंत्रण इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं कि इससे धन पैदा होता है बलकि इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे आदमी का चरित्र निर्माण होता है।

> "मनुष्य के स्वभाव में पैदा होने वाले गुण जिन्हें हम सबसे अधिक प्याह करते हैं, वे दुखों के कठोर जमीन के मिश्रण से तैयार होते हैं।"

मेरा दूसरा काम अखबार बाँटना था। दुनिया में बच्चे सबसे पहला काम यही करते हैं। भारत को मित्र राष्ट्रों की सेना के साथ लड़ने को मजबूर किया गया और पंबन में भी समुद्र के रास्ते से किसी प्रकार के जापानी सैनिकों के आक्रमण को रोकने के लिए सेना तैनात कर दी गई। रामेश्वरम् स्टेशन पर रेलगाड़ी ठहराव को निलंबित कर दिया गया। अब रेलगाड़ियाँ धनुषकोडी के टर्मिनल के रास्ते गुजरने लगीं। मेरे चचेरे भाई शमसुद्दीन ने मुझे चलती रेलगाड़ी के गार्ड द्वारा फेंके गए अखबारों के बंडलों को जमा करके अखबार घर-घर पहुँचाने के काम पर लगा दिया।

जब मैं अखबार बाँटने जाया करता था तो मैंने देखा कि राष्ट्रीय नेताओं की तस्वीरें अखबार के पहले पन्ने पर छपी रहती थीं। मैं बहुत रोमांचित हो जाता था। भारत एक देश के रूप में आ. कार लेने लगा था। विचार क्या था, लोगों के दिलों की बात 'स्वष्तंत्रता और दृढ़-संकल्प' भारतीय राज्य के लिए आह्वान में बदल गई थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के अंत होते-होते यह स्पष्ट हो गया था कि अब भारत को ब्रिटिश सत्ता से जल्दी ही आजादी मिल जाएगी। गाँधी जी ने घोषणा कर दी थी- 'भारतीय खुद अपने भारत का निर्माण करेंगे।' पूरे देश में एक अभूतपूर्व आशा की लहर दौड़ पड़ी। मेरा परिवार भी नये भारत के निर्माण में अपना योगदान करने का इच्छुक था। जब रामेश्वरम् में पहला पंचायत बोर्ड का चुनाव हुआ तो मेरे पिता पंचायत बोर्ड के अध्यक्ष चुने गए। एक दिन दोपहर की बात है, मैं जोर-जोर से बोलकर पढ़ाई कर रहा था। तभी कोई आया और मेरे पिता के बारे में पूछने लगा। मैंने उसे बताया कि उसके पिता नमाज पढ़ने गए हैं। तब उस आदमी ने कहा 'मैं उनके लिए कुछ सामान लाया हूँ। क्या मैं उसे यहाँ रख जाऊँ? मैंने इसके लिए अपनी माँ को पुकारा लेकिन वह भी उस समय नमाज पढ़ रही थीं, इसलिए उन्होंने भी कोई जवाब नहीं दिया। मैंने उस आदमी से कहा कि आप कपड़े के बंडल को खाट पर रख दें और मैं फिर अपनी पढ़ाई में लग गया।

जब मेरे पिता वापस आए और उस बंडल को देखा तो उन्होंने मुझसे पूछा 'यह क्या है, इसे यहाँ कौन दे गया है? मैंने उनसे कहा, "कोई आया था और यह आपके लिए छोड़ गया है"। इस पर वे तुरंत गुस्से में आ गए और उन्होंने मुझे खूब डाँटा। मैं डरकर रोने लगा। मेरी माँ ने अपनी बाँहों में लेकर मुझे चुप कराया। जब मेरे पिता का गुस्सा ठंडा हुआ तो उन्होंने प्यार से मेरा कंधा पकड़कर समझाया कि कभी-भी किसी-भी व्यक्ति से अवांछित उपहार नहीं लेना चाहिए। उन्होंने बताया ऐसे उपहारों के पीछे देने वाले का हित छिपा रहता है और यह खतरनाक है। उन्होंने कहा, "यह साँप को हाथ में देने जैसा है जो केवल अपने जहर से तुम्हें ही डँसेगा"।

भारत को 15 अगस्त,1947 को आजादी मिल गई। असली आजादी सही काम करने में ही निहित है। मेरे अंदर से एक अद्भुत आवाज उठी कि मुझे अब अपने इसे छोटे-प्यारे शहर को छोड़कर आगे बढ़ना चाहिए। अगर आप हमेशा अपने बचपन को अपने साथ ढोएँगे तो आप कभी-भी समर्थ नहीं हो पाएँगे। मैंने जिला मुख्यालय रामनंद के हाईस्कूल में पढ़ने की इजाजत अपने पिता से ली। शुरू में मेरी माँ को कुछ संकोच था लेकिन आखिर में उन्होंने भी हामी भर दी। वह मेरे लिए एक बड़े दरख़्त की तरह थीं जो हर मुश्किल में मुझे अपने साये में पनाह देती थीं। मेरी माँ जमा किए गये सभी सिक्के ले आयीं जिसे मैंने इमली के बीजों को बेचकर और अखबार बाँटकर जमा किए थे। उन्होंने कहा कि ये पैसे तुम्हारे स्कूल की फीस देने में काम आएँगे। जब मैं पैसे लेने से इनकार करने लगा तो उन्होंने कहा, 'माँ केवल देती हैं'।

मैंने अपने माता-पिता को रामेश्वरम में छोड़कर रामनाद के श्वार्ट्ज हाई स्कूल के लिए अपने बड़े चचेरे भाई शमसुद्दीन और जीजा जलालुद्दीन के साथ चल पड़ा। मेरे नये स्कूल में मेरा नामांकन एपीजे अब्दुलि कलाम के नाम से हुआ। नाम के 'ए', 'पी' और 'जे' अक्षर मेरी वंशावली- मेरे परदादा अवुल, दादा पाकिर और पिता जैनुलआब्दीन के नामों के संकेत हैं।

-इम्तियाज आजाद

२

साँप और सीढ़ी

"शिक्षा-रूपी वृक्ष की जड़ें कड़वी होती हैं लेकिन इसका फल मीठा होता है।"

शुरू-शुरू में श्वार्ट्ज उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मुझे कुछ खास पसंद नहीं आया। स्कूल का बड़ा मैदान, बड़े-बड़े पेड़, ऊँची छत और खंभे, ऐसा लगता था कि कहीं बहुत दूर से लाए गये हों। हर साल डेस्क और बेंच बदल दिए जाते थे। श्वार्ट्ज स्कूल का माहौल बहुत ही शांत और छोटे कस्बे रामेश्वरम् की तुलना में एकाकी था। स्कूल का नाम जर्मन लूथेरान (Lutheran) प्रोटेस्टेंट मिशनरी ईसाई फेडरिक श्वार्ट्ज के नाम पर रखा गया था। श्वार्ट्ज 1750 की शुरुआत में भारत आए थे। मुझे बताया गया था कि प्रत्येक मिशनरी का उद्देश्य उन लोगों तक प्रभु ईसा मसीह का मुक्ति संदेश पहुँचाना है जिन्होंने उनका सुसमाचार नहीं सुना है। जब ईसाइयों में पवित्र आत्मा का संचार होने लगता है तो मिशनरी इन नये ईसाइयों को अपने देसी चर्च के नेतृत्व के गठन में मदद करती है।

मुझे यह जानकर हैरानी हो रही थी कि ईसाइयों में भी अलग-अलग वर्ग हैं। लूथेरान ईसाई मार्टिन लूथर किंग के अनुयायी हैं। मार्टिन लूथर किंग 16वीं शताब्दी में एक जर्मन साधु हुए थे जिन्होंने गरीबी में रहकर समाज की सेवा शुद्धता और विनयशीलता के जरिये करने का संकल्प लिया था न कि एकांत में रहककर तपस्या् और समर्पण के जरिये। लूथेरान लोग पोप को कैथोलिक लोगों की तरह अपना धर्म गुरु नहीं मानते। वे केवल दया के औचित्य के सिद्धांत का पालन करते हैं जिसका अर्थ सामान्य रूप से होता है कि उसमें एक-दूसरे का विश्वास, ईश्वर (गॉड) पाप के दोष को हटा देता है। मुझे यहाँ फादर बोदल की सहजता और उनके द्वारा समूह में दिया जाने वाला उपदेश याद आता था, जिसके लिए वहाँ हाजिर होना जरूरी था। अतः जब भी मौका लगता था, मैं रामेश्वम् चला जाया करता था।

मेरे बार-बार घर आने को लक्ष्य करते हुए एक दिन मेरे पिता जी ने मुझे और मेरी माता जी के साथ बैठककर समझाया। उन्होंने मुझसे कहा कि "तुम्हें अब अपने इस शहर और घर से

इतना लगाव नहीं रखना चाहिए"। तभी भाग्य की लहरें तुम्हें ज्ञान–रूपी सागर में ले जाएँगी। उन्होंने कहा, "जहाँ तक हो सके तुम इस दुनियादारी से दूर रहो। कभी–भी पीछे मुड़कर न देखो और किसी चीज के लिए दुखी न हो। तुम्हारा घर वहीं है, जहाँ तुम हो"। मैंने अपने आपको घर के प्रति लगाव से अलग किया जिसके लिए मैं बिलकुल शर्मिंदा भी था। जो बातें मेरे पिता ने कही थीं उसके लिए उन्हें जरूर दिल पर चोट लगी होगी। अपने पिता के इस दर्द को दूर करने के लिए मैंने इस दर्द को अपने अंदर जज़्ब करने का मन बना लिया।

अब खाली समय में रामेश्वम् जाने की बजाय मैं अपना समय रामनाद कस्बे में बिताने लगा। एक दिन मैं सेतुपति राजा का महल देखने गया। मेरे स्कूल के नये दोस्तों ने मुझे बताया था कि शिवगंगई के राजा और रामनाथपुरम के सेतुपति राजा, बड़े महान राजा थे। इन दोनों को 18वीं सदी में अरकोट के नवाब ने हराया था। अरकोट राजगद्दी के दो प्रतिद्वंद्वी थे– चंदा साहिब और मोहम्मद अली खान वल्लाजाह। अंग्रेज लोग वल्लाजाह का समर्थन करते थे जबकि फ्रांसीसी लोग चंदा साहिब के हिमायती थे। इसी वजह से स्वतंत्र शासकों और जागीरदारों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। ये लड़ाइयाँ क्षेत्रों पर कब्जा करने और सत्ता हथियाने के लिए हुई। ये लड़ाइयाँ फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी तथा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच संघर्ष के कारण पैदा हुई थीं।

इन लड़ाइयों की वजह से भारत में व्यापारिक कंपनियों के बीच ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का वर्चस्व स्थापित हो गया। फ्रांसीसी कंपनी का प्रभुत्व सिमटकर रह गया, खासतौर से पांडिचेरी के अंतःक्षेत्रों तक ही सीमित हो गया। अपने शासन को और ज़्यादा मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने 1910 में मदुरई और तिरुनेलवेली से अलग कर रामनाद को नया जिला बना दिया।

मुझे बचपन में ही पता चल गया था कि राजनैतिक लोगों का नारा 'फूट डालो और राज करो' होता है जबकि बुद्धिमानों का नारा होता है– 'संगठित हो और आगे बढ़ो'। हमारा मतभेद हमें विभाजित नहीं करता। यह हमारी कमी है कि हम इन मतभेदों को स्वीकार नहीं करते और इन्हें सुलझा नहीं पाते तथा अपने से छोटे तथा कम समृद्ध देश को हम अपने महान राष्ट्र पर वर्चस्व कायम करने की अनुमति दे देते हैं। पिछली सदी में इस तरह के विभाजन ने हमें ठहरे हुए पानी में जमीन पर टिका दिया था और ज्वार–भाटे के भाग्य पर हमारी नाव को खेने का कोई अवसर नहीं दे रहा।

> "कोई देश महान इसलिए नहीं है क्योंकि इसके कुछ लोग महान हैं, बल्कि इसलिए है कि देश का प्रत्येक नागरिक महान है।"

रामनाद में अपने द्वितीय वर्ष में, मेरा परिचय राष्ट्रावादी क्रांतिकारी एसटीआर मणिकम से हुआ। उनके घर पर एक बड़ा पुस्तकालय था। वे लोगों को मुफ्त में किताबें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे। मैं पहली बार पुस्तकालय कौतुहलवश गया। जब मैंने मणिकम सर से पढ़ने के लिए किसी किताब का नाम सुझाने को कहा तो उन्होंने कहा, "कोई भी किताब जो बच्चों में पढ़ने की आदत डालती हो और उसमें पढ़ने की निरंतर गहन आवश्यकता पैदा करती हो, उसके लिए अच्छी किताब होती है"।

मुझे मणिकम सर के पुस्तकालय की किताबों से बड़ी राहत मिली और मैं वहाँ नियमित रूप से जाने लगा। तकरीबन एक साल बीत जाने के बाद तक मैं कोई दस किताबें पढ़ चुका था। मणिकम सर ने कहा कि "किताबें पढ़ना जारी रखो लेकिन याद रखो कि किताबें सिर्फ किताबें हैं, अतः तुम्हें अपनी तरह से सोचना सीखना चाहिए"। मणिकम सर मेरे सबसे पहले गुरु रहे जिन्होंने मुझमें किताबों के प्रति प्यार जगाया जो मुझमें जीवनपर्यन्त बना रहा।

मणिकम सर की किताबों से मेरे नाजुक जेहन में किताबों के प्रति प्रज्ज्वलित लगाव को श्वार्त्ज में सबसे पहले मेरे शिक्षक अय्यादुराई सोलोमन ने महसूस किया। मैं भी उनके साथ गहरा लगाव महसूस करता था। अय्यादुराई सोलोमन के स्नेहिल और दोस्तांना रवैये के कारण कक्षा में मैं हमेशा सुखद अनुभव करता था। वह हमेशा यह कहकर मेरा उत्साह बढ़ाते रहते थे कि "एक खराब छात्र महान शिक्षक की तुलना में, एक अच्छा छात्र एक साधारण शिक्षक से बहुत कुछ सीख सकता है"।

मेरा हाई स्कूल का समय देश के इतिहास में संयोगवश काफी हंगामेदार रहा। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान को एक अलग देश घोषित कर दिया गया और ठीक आधी रात के बाद, 15 अगस्त 1947 को भारत का भी अस्तित्व एक पृथक देश के रूप में विश्व के समक्ष आ गया। इसके बाद हिन्दुओं, मुस्लिमों और सिखों के बीच भारी मार-काट मच गई। विभाजन के दौरान कोई चौदह मिलिन (140 लाख) लोग दर-बदर हुए। मानवता के इतिहास में यह सबसे बड़ा सामूहिक-विस्थापन था।

इस पीड़ा के बावजूद हमारा देश अगले कुछ महीनों में सँभलने लगा। गृह मंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल ने 565 छोटे जागीरदारों को भारतीय संघ में शामिल करने की जिम्मेदारी ली। मैं उनकी नीति 'मखमली दस्ताने में लौह मुट्ठी' का प्रशंसक था। उनकी आश्वस्त करने वाली बात और साथ में बल प्रयोग करने की नीति ने देश को अलग-अलग टुकड़ों में बंटने से बचा लिया। अशांत जूनागढ़ और हैदराबाद जैसी रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होना पड़ा। यहाँ तक स्कूली बच्चे भी जानते हैं कि प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कश्मीर की समस्या को सरदार बल्लभ भाई पटेल से दूर रखा। नेहरू शांति की बात करते रहे जबकि पाकिस्तान की मदद से हथियारबंद आदिवासी गैंग ने जम्मू एवं कश्मीर के एक बड़े भू-भाग पर कब्जा जमा लिया था। इसी वजह से वहाँ के हालात बदतर हो गए थे।

आजादी के कुछ सालों में उठा-पटक का दौर चलता रहा। 30 जनवरी, 1948 को 5 बजकर 17 मिनट पर नयी दिल्ली के बिरला हाउस में एक हत्यारे द्वारा महात्मा गाँधी को गोली मार दी गई। वे एक प्रार्थना सभा में भाग लेने जा रहे थे। मुझे अपने राष्ट्रपिता की हत्या से काफी दुख हुआ, यह जानकर मुझे सदमा लगा कि किसी ने उनकी हत्या कर दी। मैं कुछ समय के लिए स्कूल से छुट्टी लेकर कुछ दिनों के लिए अपने माता-पिता के पास रामेश्वरम् चला गया। इस दौरान मैं बमुश्किल किसी से बात-चीत करता था और अक्सर मस्जिद जाकर वहाँ घंटों अकेले चिंतन की मुद्रा में बैठा करता था।

एक दिन मेरे पिता ने मेरे बगल में बैठकर मेरे दुखः के बारे में जानना चाहा। मैंने उनसे बताया कि "यह दुनिया अन्यादय और बेईमानी से भरी हुई है। व्यक्तिगत और सांप्रदायिक दोनों

स्तर पर हर तरह के अत्याुचार हो रहे हैं। बिना किसी नैतिक सोच के लोग अपनी मन–मर्जी क्यों करते हैं ?"

मेरे पिता जी ने कहा, "अल्लाह–तआला ने लोगों का सृजन उन्मादी बनने यानी होशो–हवास खोने के लिए नहीं किया है। उसने बंदों को स्वयं में आनंदित होने के लिए जन्म नहीं दिया है। खुदा ने इनसान को केवल खाने, पीने, सोने और यौन–इच्छा की पूर्ति के लिए नहीं बनाया है। जिस आजादी का लोग दुरुपयोग करते हैं वह कोई उपहार नहीं बल्कि एक जिम्मेदारी है। हमारी दुनिया एक परीक्षण–स्थल है। जिस दिन (कयामत के रोज) फैसला होगा उस दिन बिना अपवाद के हर इनसान की आजादी का हिसाब–किताब होगा कि उसने किस तरह उसका इस्तेमाल किया! अगर वे सचाई की अनदेखी या इसका उल्लंघन इस दुनिया में किए होंगे तो उन्हें। वहाँ स्वीक. ार करना ही होगा। उनके पास कोई विकल्प नहीं होगा, वहाँ उनके तिकड़म और दया की भीख माँगने या माफी माँगने का कोई असर नहीं होगा। माफी माँगने और अपने में सुधार करने में भी तब देर हो चुकी होगी।"

इसके बाद मेरे पिता जी ने मुझे प्यार से समझाया, "बेटा, अच्छा बनने के लिए इंतजार मत करो। अच्छा बनो अपनी स्वतंत्र इच्छा से– आज और अभी से। और जो तुम्हारे नियंत्रण में न हो उसके लिए एक सीमा से अधिक चिंता मत करो। सभी परीक्षाओं में पास होने के लिए जरूरी है कि तुम्हें अपनी सीमा और असीम बौद्धिकता का पता होना चाहिए। ऐसा करके तुम अपने आप को गलतफहमी से बचा पाओगे और अल्लाह की रजा से अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग कर सकोगे। तुम्हें अपना दिल अल्लाह की ओर एक कदम ले जाना होगा, और उसका प्यार तुम्हारी ओर कई कदम बढ़ आएगा।"

"बिना गुरु के ज्ञान नहीं।"

अपने पिता जी से बात करने के बाद मुझे बहुत सकून मिला और स्कूल लौटने को मैं तैयार हो गया। श्वार्ट्ज स्कूल लौटकर मुझे अब बहुत शांति भी मिली। पुराने जमाने की उमस–भरी मेरे स्कूल की इमारत अब मुझे अपना लगने लगी। हालाँकि यहाँ मेरे अपने कस्बे–जैसा गर्मजोशी का माहौल नहीं था, फिर भी मुझे पढ़ने–सीखने की जगह मिल गयी थी। मैं अपने शिक्षकों के साथ जाली स्थायी बंधन में भी बंधा गया था।

मैं अपने गणित के शिक्षक रामकृष्ण अय्यर के खासतौर से बहुत निकट हो गया। मेरे प्रति रामकृष्ण अय्यर का विशेष लगाव था और उन्होंने मुझमें गणित के प्रति रुचि पैदा की। रामकृष्ण सर ने जो गणित पढ़ाया उसकी ताकत यह थी कि वह एक चीज को दूसरी में तब्दील कर सकती थी– वह ज्यामिति को भाषा में बदल सकती थी। यही बात शिक्षा पर भी लागू होती हैः यह पशु–प्रवृत्ति को चेतना में बदल सकती है।

शिक्षा के बारे में रामाकृष्ण सर का विचार आध्यात्मिक था। उनका विश्वास था कि सच्ची शिक्षा किसी छात्र में सूचनाओं को ठूँस देना नहीं है बल्कि उसके अंदर जो पहले से मौजूद है उसे सामने लाना है। इसे वे याद रखने की प्रक्रिया के रूप में नहीं देखते थे, बल्कि पोषण, स्वीकार

करने और बुलाने की प्रक्रिया मानते थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि "शिक्षा उस व्यक्ति को वह बनाने की प्रक्रिया है जो कि उसे सचमुच बनना है।" रामाकृष्ण सर के लिए शिक्षा सर्वश्रेष्ठ थी, प्रकट में यह आदमी की आंतरिक दिव्यै क्षमता है।

एक बार उन्होंने कहा था, "किताबों पर आधारित शिक्षा असली मनुष्य का सृजन नहीं कर सकती। पूर्णता की प्राप्ति के लिए शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुद्धता, बौद्धिक निपुणता, नैतिक बल और जीवन के आध्यात्मिक दृष्टिकोण के साथ सही प्रयास का समन्वलय जरूरी है। विद्यार्थियों को अपनी संभावनाओं की पूर्ति के लिए ब्रह्मचर्य–जीवन, सचाई और धर्म का पालन करना चाहिए।

आधुनिक युग के प्राचीन संत रमण महर्षि का निधन 14 अप्रैल 1950 को हो गया। स्कूल में उनके निधन पर शोक सभा का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों को बताया गया कि महर्षि मौन शक्ति और वाणी के कम प्रयोग में विश्वास रखने वाले संत के रूप में विख्यात थे। वे पूरी तरह हर प्रकार की चिंता से मुक्त थे। कहा जाता था कि उन्होंने न तो प्रसिद्धि की, न आलोचना की चिंता थी और न ही उन्हें किसी तरह का किसी प्राणी या वनस्पति से अप्रत्याशित कोई लगाव था। उस शाम रामाकृष्ण अय्यर ने मुझे बताया कि सत्–चित्–आनंद (अस्त्वि, चेतना और आनंद) ईश्वर के अनुभव का व्यक्तिपरक वर्णन है। यह उदारता से भरा आनंदमय अनंत का अनुभव, शुद्ध चेतना ही परम सत्य की झलक है।

मैं उनकी बात बहुत ज़्यादा समझ तो नहीं पाया लेकिन जो कुछ मैंने समझा वह कुछ इस तरह था– "अगर तुम्हारे आंतरिक दुनिया में शांति है और कोई विवाद नहीं है तो तुम्हारी बाहरी दुनिया भी इसी प्रकार की होगी। हाई–स्कूल की शिक्षा पूरी करने के लिए यह एक मूल्यवान सबक था।

हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के बाद मैंने विज्ञान की पढ़ाई को कॅरियर बनाने का फैसला किया और मेरा दाखिला तिरुचिरापल्ली के सेंट जोसेफ कॉलेज में हो गया। इससे पहले मैं रामनाद से आगे कहीं भी नहीं गया था, पहली बार मैं इतने बड़े शहर में आया था। भौगोलिक दृष्टिकोण से तिरुचिरापल्ली तमिलनाडु का केन्द्रीय स्थल है, तीसरी शताब्दी (बीसीई) में यहाँ चोल राजवंश की राजधानी हुआ करती थी। समय के साथ यहाँ की सत्ता में बदलाव होता रहा। पहले पल्लव फिर मध्यकालीन चोल, पाण्ड्या, दिल्ली सल्तनत, मदुरै नायक और अंत में अंग्रेजों के पहले कर्नाटक के चंदा साहिब का यहाँ शासन रहा।

दूसरे गौरवमयी स्थानों की तरह तिरुचिरापल्ली में भी हमारे पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई समृद्ध विरासत कई स्मारकों के रूप में देखी जा सकती है। मदुरै नायकों ने इसे सातवीं शताब्दी में अपनी राजधानी बनाया था और यहाँ मौजूद 'रॉक फोर्ट मंदिर' उन्होंने ने ही बनवाया था। शहर के बीच में स्थित इस विशाल मंदिर की ऊँचाई 83 मीटर है, यह बड़े ही ऐश्वर्य के साथ इस पूरे परिदृश्य का अवलोकन कर रहा है।

जैसा कि मैंने महसूस किया– कॉलेज का भवन बहुत ही उत्कृष्ट था। यह कुछ शताब्दी पुराने यूरोपीय मीनारों और विहारों जैसा था। यह कॉलेज 1844 में कैथोलिक चर्च के पुरुषवादी व्यवस्था 'सोसायटी ऑफ जीसस' द्वारा स्थापित किया गया था और 1869 तक मद्रास विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहा।

कैम्पस में तीन-मंजिला छात्रावास भवन में मुझे रहने को जगह मिली। मेरे कमरे के दो और साझीदार थे- एक श्रीरंगम का कट्टरवादी अयंगर ब्राह्मण और दूसरा केरल का सीरियाई ईसाई। पहली बार मैं ऐसे लोगों के साथ रह रहा था जिनकी परवरिश हमसे एकदम अलग तरह से हुई थी। इस अनुभव से मैंने जाना कि आपके आस-पास के लोगों के सौहार्द का बहुत कुछ लेना-देना, किसी की पृष्ठभूमि या धार्मिक-निष्ठा को साझा करने से है। इसका बहुत कुछ संबंध आपके भीतर के सौहार्द से है। जब आप किसी के साथ नजदीकी तौर पर कमरे में रह रहे हों तो रहने-सहने और स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना अपरिहार्य है। इन नियमों के मानने, पालन करने से भी हमें आपसी सौहार्द स्थापित करने में मदद मिलती है।

मेरे कमरे के साथी मेरे बहुत अच्छे दोस्त बन गए तथा कॉलेज के अंदर और बाहर हम नियमित तिकड़ी बन गए। खाली समय में हम तीनों एक साथ शहर घूमने जाया करते थे। यहाँ तक कि एक बार हम तीनों 'रॉक फोर्ट मंदिर' की चोटी पर पहुँचने के लिए 400 कठिन सीढ़ियाँ बिना रुके, चढ़ गए थे।

परीक्षा में अंक और श्रेणी हासिल करने के हिसाब से कॉलेज में मैं बहुत तेज विद्यार्थी नहीं था लेकिन पढ़ाई में कठोर परिश्रम कर रहा था और अपना मस्तिष्क विकसित कर रहा था। अब तक मैं यह समझ गया था कि सफलता के लिए जरूरी है कि मैं स्कूथ के किसी एक शिक्षक से अपना निकट का संबंध बनाऊँ। मेरे छात्रावास के वार्डन और अंग्रेजी के लेक्चरर माननीय फादर सेकुएरा (Rev- Fr- Sequeir) ऐसे ही एक शिक्षक थे। वह प्रत्येक छात्र को उसकी उम्मीद, कल्पना, शक्ति और कमजोरी को व्यक्तिगत रूप से जानते थे। सेकुएरा साहब कक्षा में ऐसा माहौल बनाने के लिए काम करते थे कि सभी छात्र एक-दूसरे को इस रोशनी में देख सकें और कोई भी छात्र अपने विचार और भावनाएँ साझा करने में असुरक्षित महसूस न करे। वह कहा करते थे, "जीवन साँस लेने की तरह एक सचल प्रक्रिया है। इसे हमें निरंतर करने की चाहत रखनी होगी। पूर्णता निरंतर होने वाला परिवर्तन है।"

मैं खुशनसीब था कि उन्ही की तरह मुझे और भी प्रबुद्ध शिक्षक मिले थे। वे सभी मुझे मेरी उच्चतर शिक्षा को जारी रखने के साथ-साथ आग्रह करते थे कि मैं एक इनसान की तरह अपना विकास करूँ। मेरे गणित के प्रोफेसर थोथाथरी अय्यंगर (Thothathri Iyengar) खासतौर से मेरे लिए प्रेरणा-स्रोत थे। वे और मेरे अन्य शिक्षकों ने इस दौरान मुझे उच्चतर स्थिति पर पहुँचने और समझ विकसित करने में मेरी मदद की। बाद में मैंने जाना कि ऐसे परिवर्तन के बिना जीवन उद्देश्यपूर्ण नहीं हो सकता। किसी के आंतरिक दुनिया के लिए यह बहुत ही सूक्ष्म वस्तु है लेकिन इसका प्रभाव किसी के जीवन पर हमेशा के लिए होता है। हमारे चलने के साथ-ही-साथ दुनिया चलती है, दुनिया हमारे लिए है। दुनिया को बचाने वाली क्रांति अंततः व्यक्तिगत होगी।

हमारे एक और शिक्षक विद्वान होने के साथ काफी उदार भी थे। सेंट जोसेफ कॉलेज के तृतीय वर्ष में मुझे शाकाहारी भोजनालय का सचिव नियुक्त किया गया। एक रविवार को हमने अपने मुख्य अधिष्ठाता माननीय फादर कालाथिल को लंच के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने मुझसे कहा था, "कलाम, इस दुनिया के बारे में सोचकर अपना दिल मत दुखाओ, जब ईश्वर ने पहले

से तुम्हारा हिस्सा आवंटित कर दिया है और उसे मिलने का समय नियत कर दिया है तो तुम केवल 'उसे ही' जानो। तुम चाहो या न चाहो लेकिन वह तुम्हें प्रतिदिन नयी आजीविका (रोजी) प्रदान करता है।" यह किसी ईसाई शिक्षक के साथ वर्ष–भर चलने वाले मेरे आध्यात्मिक–साहचर्य की शुरुआत को दर्शाता है।

माननीय फादर कालाथिल को हैरानी होती थी कि वे लोग कितने अज्ञानी हैं जो सृजनकर्ता की शक्ति और योजना को भूलकर खुद को दूसरे तरह के कार्यों में व्यस्त कर लेते हैं। बाद वाले से चिपककर और पहले वाले को छोड़कर लोग शाश्वत को भूल जाते हैं और ऐसे कामों में लिप्त हो जाते हैं जो नश्वर हैं।

सभी शिक्षकों का बहुत शुक्रिया, जिनकी बदौलत मैं किशोरावस्था में ही जान गया था कि "ज्ञान और समर्पण पूर्णता की सीढ़ी है। इसके विपरीत आरामतलबी और अज्ञानतारूपी सर्प आपको जीवन के निम्न–स्तरीय कामों में फँसाकर रख देते हैं।" अथवा सबसे बुरा तो यह है कि वे (सर्प) आपको निगल जाते हैं यानी विनष्ट कर देते हैं।"

३

आशा का दुस्साहस

> "प्रकृति कभी जल्दसबाजी नहीं करती। यह लाखों साल के रूप में काम करती है। ८० से १०० वर्ष तक का एक मनुष्य का जीवनकाल प्रकृति के कार्य की तुलना में कुछ भी नहीं बल्कि एक बहुत ही छोटा-सा अंश है। मनुष्यच का जीवनकाल बेकार है अगर उसे सुषुप्तावस्थार में ही गुजार दिया जाए।"

सेंट जोसेफ कॉलेज में जब मैं चतुर्थ एवं अंतिम वर्ष का छात्र था, एक वृहस्पतिवार की शाम नतहर वली की दरगाह पर गया। नतहर वली एक सूफी संत थे जो तिरुचिरापल्ली में 11वीं शताब्दी में आए थे। वह पहले सूफी संत थे जिन्होंने दक्षिण भारत और श्रीलंका को इस्लाम से परिचित कराया। मैं कुछ घंटों तक दरगाह में शांतिपूर्वक बैठा रहा। न जाने कहाँ से कुछ देर बाद एक फकीर प्रकट हुए और मेरे बगल में बैठ गए।

उन्होंने मुझसे पूछा, "हे नौजवान, क्या तलाश कर रहे हो"?
मैंने कहा, "मैं अपनी सचाई को जानने की कोशिश कर रहा हूँ"।
फकीर ने पूछा, "फिर परेशानी क्या है"?
मैंने कहा, "मैं इसे देख नहीं पा रहा हूँ"।
फकीर ने कहा, "नफ्स को मारो यानी उस पर नियंत्रण रखो।"
मैंने पूछा, "वह क्या (चीज) है?"

फकीर ने कहा, "नफ्स मानव-प्रकृति का कमजोर, घमंडी और भावुक पहलू है जिसमें मानव-जीवन के निष्क्रिय और पाशविक पहलू शामिल होते हैं। यह इनसान की सचाई के चारों ओर लिपटा होता है। आदमी के अच्छे जीवन का लक्ष्य शुद्धता की अवस्था को पाने और ईश्वर की इच्छा के सम्मुख प्रस्तुत होने के लिए नफ्स पर काबू पाना है।

मैंने पूछा, "ये मानसिक–आध्यात्मिक चरण क्या हैं? कृपया इसकी व्याख्या करें, मैं सचमुच इससे अनजान हूँ।"

उन्होंने बताया– मनुष्य का जीवन कई मानसिक–आध्यात्मिक घटनाओं और स्थितियों एवं परिस्थतियों से गुजरता है जिसे भगवान ने महान उद्देश्यों के लिए बनाया है। एक कल्ब होता है, जिसका मतलब दिल है जो विचारों और भावनाओं का पालना होता है। वास्तव में यह दो युद्धरत सेनाओं का युद्धस्थल है– एक तरफ नफ्स या लालसा है तो दूसरी ओर रूह या आत्मा है। सही रास्ते पर चलने वालों के लिए आध्यात्मिक अनुशासन में कल्ब की सफाई एक जरूरी तत्व है। और इसके बाद हमारा सिर्र, अहंकार है। अहंकार को खत्म करने का मतलब है कि हम अपना ध्यान सांसारिक–जीवन से हटाकर आध्यात्मिक क्षेत्र में लगा रहे हैं।

इसके बाद मैंने पूछा, "आपने दो विभिन्न क्रियाओं– 'कल्ब की सफाई' और 'सिर्र (अहंकार) को दूर करने' का प्रयोग किया है। ऐसा क्यों?"

फकीर ने लगभग उठकर जाते हुए, इन्हें आखिर में समझाने के लहजे में कहा "सफाई' में पूर्वाग्रह का खत्म करना शामिल है, किसी को क्या पसंद है और क्या नापंसद, अतः जो अच्छा है उसे ग्रहण कर लिया जाता है और खराब को छोड़ दिया जाता है। सिर्र को खत्म करना अहंकार–केन्द्रित मानव–प्रवृत्तियों के इनकार और विस्मृयति के महत्व को बताता है। वास्तव में यह कठिन कार्य है। आत्म की प्रदीप्ति के लिए निरंतर प्रार्थना और जागरण की जरूरत होती है। यह आवश्यक आध्यात्मिक यात्रा है।"

"तुम्हारी तकदीर सितारों में नहीं बल्कि तुममें है।"

मेरे दिल को शांति मिल गई थी। मैं फकीर को विदा करने के लिए भी नहीं उठ पाया। मैं वहाँ कोई एक घंटे या इससे अधिक देर तक और बैठा रहा। उस रात मुझे बहुत ही अच्छी और आराम की नींद आई। सुबह जब मैं उठा तो तुरंत भौतिकी की पढ़ाई बंद कर इसके बदले इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने का फैसला किया। मैं यह जानता था कि उड़ने का अपना सपना पूरा करने के लिए यह जरूरी है। उड़ने की इच्छा मेरे मन में उसी समय घर कर गई थी जब रामेश्वरम् में मेरे शिक्षक शिवा सुब्रह्मण्यनम अय्यर ने समुद्र की लहरों पर बाज को कलाबाजी करते मेरी कक्षा को बताया था कि 'पक्षी कैसे उड़ते हैं।' मैं आसानी से दो साल पहले भी इंजीनियरिंग की पढ़ाई का विकल्प चुन सकता था लेकिन सौभाग्यवश अभी–भी मद्रास प्रौद्यौगिकी संस्थान (एमआईटी) में उपयुक्त पाठ्यक्रम उपलब्ध था। मैंने वहाँ तुरंत 'वैमानिकी इंजीनियरिंग के त्रिवर्षीय पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा पाठ्यक्रम' के लिए आवेदन कर दिया। मेरा आवेदन करना सफल रहा।

दरअसल इस प्रतिष्ठित संस्थान में दाखिला लेना महँगा था। मेरी बहन जोहरा मेरी मदद के लिए आगे आयीं, उन्होंने अपनी सोने की चूड़ियाँ और गले का हार गिरवी रखकर मेरे दाखिले की फीस चुका दी। मैं उनकी मदद लेने में हिचक रहा था लेकिन मेरे पास दूसरा कोई विकल्प नहीं था। सही कहूँ तो जोहरा बहन ने मुझे हर तरह की असली कुर्बानी (त्याग) की शिक्षा दी–

- कि यह प्यार के लिए किया जाना चाहिए।
- कि यह जरूरत के लिए किया जाना चाहिए, दूसरे तमाम विकल्पों पर इसको तरजीह दी जानी चाहिए।
- कि यह वैसे लोगों के लिए किया जाना चाहिए जिन्हें तुम्हारी ताकत की जरूरत है, क्योंकि उनकी अपनी ताकत पर्याप्त नहीं है।

मेरे पास जो कुछ भी था उसमें से लोगों को सार्थक दान के रूप में देकर, जीवन–भर मैंने अपनी बहन की उदारता का अनुकरण किया।

मैंने जल्दी ही एमआईटी में अपना स्थान पा लिया। मुझे इंजीनियरिंग विषय आसान लगा और जल्दी ही मैंने तकनीकी चित्रांकन की अपनी प्राकृतिक प्रतिभा खोज निकाली। मैं आसानी से चीजों को विभिन्न सतह पर और विभिन्न संभावनाओं के साथ देख सकता था। योजना, ऊँचाई और भाग (Sections) थोड़ी–सी मेहनत से मुझे मिल जाते थे। पाठ्यक्रम बहुत ही रोचक था। मै. ने उड़ान और नियंत्रण तकनीक तथा रक्षा प्रणाली का अध्ययन किया। इनका प्रयोग विमान और अंतरिक्ष यान में होता है। मुझे संतोष हो रहा था कि किसी भी तरह के विमान की डिजाइन, निर्माण, विकास, परीक्षण एवं देखभाल करने का मेरा उद्देश्य पूरा हो रहा था। मैंने जान लिया था कि मुझे मेरा पेशा मिल गया है।

विभाग में सीखने का बहुत ही गहन माहौल था, और यहाँ के संकाय में उच्च–स्तरीय प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञ शामिल थे। आठ या नौ विद्यार्थियों की हमारी छोटी–सी कक्षा थी, अतः मुझे अपने शिक्षकों और सहपाठियों से बातचीत करने का मौका मिल जाता था।

मुझे अपने तकनीकी वायुगति विज्ञान के शिक्षक प्रो. स्पॉठन्डेर से विशेष लगाव था। वे आस्ट्रियाई वैज्ञानिक थे और जिन्हें द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान नाजियों ने बंदी बनाकर यातना शिविर में बंद कर दिया था। संयोगवश वायुगति विज्ञान इंजीनियरिंग के विभागाध्यक्ष जर्मनी के प्रो. वाल्टपर रिर्पेथिन थे। हमारे संस्थान में एक और प्रतिष्ठित जर्मन लेक्चरर थे– प्रो. कुर्त टैंक, जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में काम आए बेहतरीन एक सीट वाले लडाकू विमान फॉकल–विल्फि एफडब्यू 190 (Fockle-Wilf FW 190) को डिजाइन किया था। जाहिर है, जर्मनी के प्राध्यापकों और प्रो. स्पॉसन्डपर के बीच तनाव होना ही था।

> “जब विद्यार्थी तैयार होता है तो शिक्षक दिखाई देगा।
> लेकिन जब विद्यार्थी सही मायने में तैयार होगा...
> तो शिक्षक गायब हो जाएगा।”

मैं प्रो. स्पॉथन्डकर का, उनके उच्च व्यावसायिक स्तर और व्यक्तिगत गुणों के कारण प्रशंसक था। वे हमेशा शांत, ऊर्जावान और खुद पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति थे। वे हमेशा नई टेक्नोलॉजी से अवगत रहते थे और अपने छात्रों से भी ऐसी ही उम्मीद रखते थे। मैं उनसे बातचीत में अधिक समय बिताता था। हम दोनों नियमित रूप से शाम को लंबे–चौड़े एमआईटी कैम्पस में घूमा करते थे।

प्रो. स्पॉन्ड्र कहा करते थे कि उन्हें भारत की महान सभ्यता और यहाँ के सहिष्णुन लोगों की पहचान से ईर्ष्या होती है। वे व्याख्या कर बताते थे कि पुराने समय में ऑस्ट्रिया अनेक समस्याओं से गुजरा है। ऑस्ट्रिया के अंदर कई बड़े क्षेत्रीय अंतर हैं और ऑस्ट्रिया के कुछ भाग इससे लगे देशों में कई बार शामिल होने को इच्छुक रहे हैं। प्रो. स्पॉन्डेर कहा करते थे यद्िप भारत ने किसी भी देश पर कभी आक्रमण नहीं किया बल्कि अपने आक्रमणकारियों के धर्म और परंपरा को अपने में समाहित कर लिया। अधिकतर आक्रमणकारी अपने देश वापस नहीं गए और समय के साथ वे यहीं (भारत) के होकर रह गए।

हमारे दूसरे शिक्षक जिन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया वे थे– प्रो. केवीए पांडलाई, जो मुझे 'वायु–संरचना डिजाइन एवं विश्लेषण' पढ़ाते थे। वह बहुत ही खुशमिजाज, मित्रवत् और उत्सांही शिक्षक थे जो हर साल पाठ्यक्रम को ताजा दृष्टिकोण के साथ पेश करते थे। मैंने प्रोफेसर पांडलाई से बौद्धिक ईमानदारी की बड़ी समझ हासिल की। मैंने अपने जीवन में जल्द ही यह जान लिया था कि 'सत्यक होने की जरूरत' किसी की अपनी समझ है। यह बहुत ही सरल था। प्रो. पांडलाई ने मुझे उच्चतर सिद्धांत का पाठ पढ़ाया थाः "हमें अपने लिए भी वही सबूत और कठोर कसौटी का मापदंड अपनाना चाहिए जो हम दूसरों के लिए तय करते हैं"। उसी समय से मैंने इस सिद्धांत को अपना लिया, जिसका पालन मैंने दृढ़ता के साथ जीवन–भर किया।

प्रो. पांडलाई इस बात पर जोर देते थे कि बौद्धिक ईमानदारी का संबंध बौद्धिक विनम्रता से है। उन्होंने मुझे सीख दी कि कैसे हमें अपने ज्ञान के प्रति जागरूक रहना चाहिए तथा कभी–भ. ाी पूर्वाग्रह, पक्षपात और अपने दृष्टिकोण की सीमाओं का शिकार नहीं होना चाहिए। यह केवल नैतिकता की बात नहीं हैः अपने ज्ञान के प्रति जागरूकता आपको नई चीजों के बारे में सीखने की अनुमति देता है और आपको अनावश्यक गलती करने से बचाता है।

मैं सच में बहुत ही सौभाग्यशाली विद्यार्थी था। मेरे शिक्षक बहुत ही प्रबुद्ध लोग थे जो पाठ्यक्रम के अलावा बहुत कुछ पढ़ाते थे। प्रो. नरसिंहा राव एक गणितज्ञ थे जो कि हमें न सिर्फ सैद्धांतिक वायुगति विज्ञान पढ़ाते थे बल्कि अनेक अन्य गूढ़ बातों पर सोच–विचार करने के लिए मुझे प्रोत्साहित भी करते थे। उनसे मैंने सीखा कि यह कोई मायने नहीं रखता कि "आपके अध्ययन का क्षेत्र क्या है, आप ईश्वर के योगदान से दुनिया के विशेषज्ञों के योगदान की तुलना में बहुत अधिक सीख सकते हैं।" प्रो. राव कहा करते थे कि ईश्वर अनंत है क्योंकि इसकी न तो शुरुआत है और न ही अंत। वह हमेशा मौजूद रहा है और हमेशा मौजूद रहेगा। दूसरी ओर हम मानव अर्द्ध–अनंत हैं क्योंकि हमारी शुरुआत जन्म से होती है लेकिन हमारी आत्मा का अस्तित्व हमेशा बरकरार रहता है। इस बात को जानने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जन्म और शारीरिक–मृत्यु के बीच का समय बहुत महत्वपूर्ण नहीं है।

> "आप जिस क्षण कोई निर्णय लेते हैं उसी क्षण आपका भाग्य तय हो जाता है।"

वैसे भी समय के अंतराल का कोई महत्व नहीं है। मेरा अनुभव बता रहा था कि जो मैंने किया है वह कुछ खास है। अपने अंतिम वर्ष में अपने चार सहपाठियों के साथ मिलकर मुझे एक

निम्न–स्तरीय लड़ाकू विमान का डिजाइन तैयार करने का काम दिया गया। मैंने पूरा डिजाइन तैयार करने और रेखाचित्र बनाने की जिम्मेदारी ली। अन्य साथियों ने आपस में प्रोपल्शन (propulsion) की डिजाइनिंग, संरचना, नियंत्रण और विमान के अन्य उपकरणों की जिम्मेदारी ली।

हम अपनी इस परियोजना पर कुछ ही दिन काम किये थे कि हमारे मार्गदर्शक और एमआईटी के निदेशक प्रो. के. श्रीनिवासन ने हमारे काम की समीक्षा की और हमारी प्रगति को एकदम निराशाजनक बताया। मैंने इस काम के लिए एक महीने का और समय माँगा लेकिन प्रो. श्रीनिवासन जरा–सा भी नहीं पिघले। उन्होंने मुझसे कहा– "देखो नौजवान आज शुक्रवार की दोपहर है, मैं तुम्हें 3 दिन का समय दूँगा और यदि डिजाइन–विन्यास सोमवार की सुबह तक नहीं मिला तो तुम्हारी छात्रवृत्ति रोक दी जाएगी।"

श्रीनिवासन की चेतावनी से मुझे गहरा धक्का लगा क्योंकि छात्रवृत्ति मेरी–जीवन रेखा थी। अगर इसे रोक दिया गया तो मैं आगे की पढ़ाई जारी नहीं रख पाऊँगा। अपने निदेशक द्वारा दिए गये तीन दिन में मुझे काम पूरा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था, जो लगभग असंभव प्रतीत हो रहा था।

मैंने अपने दल के सदस्यों् से बात की। हमने तुरंत फैसला कर लिया कि हम सब मिलकर काम करेंगे और हमलोग उस रात सोए भी नहीं। प्रोफेसर द्वारा तय समय सीमा को देखते हुए यह जरूरी था। हम एक–एक कर रेखांकन बोर्ड पर काम किये और उस रात खाना भी नहीं खाये। शनिवार को मैंने केवल एक घंटे की छुट्टी ली। रविवार सुबह को जब मैं प्रयोगशाला में डिजाइन पूरा करने वाला था तभी लगा कि वहाँ कोई मौजूद है। ये प्रो. श्रीनिवासन थे जो हमारे काम का परीक्षण करने आए थे। मेरी डिजाइन और रेखांकन देखकर उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई और गले लगा लिया। उन्होंने कहा, "मैं जानता हूँ कि मैं तुम पर दबाव बना रहा था, एक सख़्त समय–अवधि के भीतर काम पूरा करने का। बिना दबाव के प्रगति नहीं होती।"

उनके अनुभव से मैंने एक आवश्यक सचाई के बारे में जाना। मैंने यह महसूस किया कि हम चाहें या न चाहें, हम सभी जीवन का अंतिम खेल खेल रहे हैं। जो इस खेल को अच्छी तरह खेलेंगे वे जीतेंगे और जो इसे खराब तरीके से खेलेंगे उन्हें नुकसान उठाना पड़ेगा। और वे लोग जो यह नहीं जानते कि वे खेल खेल रहे हैं वे भाग्य के क्रूरतम हाथों के शिकार होंगे। हमारा मुकद्दर जीवन के इस खेल को जीतना है क्योंकि हमारा लक्ष्य ईश्वर के साथ बैठना है। भाग्य जीवन में केवल तभी कदम रखता है जब हम इस खेल को अच्छी तरह से नहीं खेलते या खेलने से एकदम इनकार कर देते हैं।

> "हर एक चीज के पीछे परमात्मा का एक उद्देश्य होता है
> और हर चीज में परमात्मा विद्यमान होता है।"

जब मैंने एमआईटी से स्नातक की डिग्री हासिल की तब मैं 26 साल का था और जीवनके खेल के लिए तैयार था। मेरा चयन बंगलुरू के हिन्दुस्तान एरोनॉटक्सि लिमिटेड (एचएएल) में

ग्रेजुएट प्रशिक्षु के रूप में हो गया। मेरी पहली नौकरी एचएएल के इंजन डिवीजन में लगी। यह विभाग वायुयान के पिस्टन और टरबाइन एयरक्राफ्ट इंजन की पूरी मरम्मत का काम देखता था। इस काम में परिशुद्धता बहुत महत्वपूर्ण था, लापरवाही का नतीजा विनाशकारी हो सकता था। आने वाले दिनों में रॉकेट–संबंधी करियर के लिए, निश्चित तौर पर मेरे लिए बहुत ही अच्छा प्रशिक्षण था।

इसके कुछ समय बाद अपने आप ही मुझे नौकरी के दो अन्य अवसर मिल गए। भारतीय वायु सेना में शार्ट सर्विस कमीशन के जरिये नौकरी का प्रस्ताव मिला। इसके अलावा रक्षा मंत्रालय के अंतर्गत काम करने वाले रक्षा विभाग के तहत प्रोद्यौगिकी विकास एवं उत्पादन, डीटीडी एंड पी (वायु) निदेशालय ने अपने यहाँ इंजीनियर के लिए विज्ञापन निकाला था। मैंने दो स्थानों के लिए आवेदन कर दिया और जनवरी 1958 में भारतीय वायु सेना देहरादून तथा नयी दिल्ली स्थित प्रोद्यौगिकी विकास एवं उत्पादन, डीटीडी एंड पी (वायु) निदेशालय द्वारा साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। इससे पहले मैंने देश के दक्षिणी भाग के अलावा दूसरे भागों की यात्रा नहीं की थी। अब मुझे अपने देश के विशाल भू–भाग में अपनी किस्मत आजमाना था। मैं मद्रास सेंट्रल रेलवे स्टेशन से ग्रैंड ट्रंक (जीटी) एक्सप्रेस में बैठ गया और खिड़की वाली सीट पाने में सफल रहा।

दो रात और एक दिन की यात्रा ने अपने देश और इसके इतिहास के बारे में मेरी धारणा बदल दी। अब मैं यह समझ पा रहा था कि क्यों गंगा और इसकी सहायक नदियों के संपन्न उपजाऊ मैदानी भागों में कठोर मरुभूमि और पहाड़ी इलाके के लोगों ने आक्रमण किया था। मैंने यह भी देखा कि कैसे उष्ण कटिबंधीय कर्क रेखा का दक्षिण भारत, विंध्य् और सतपुड़ा पर्वतश्रेणी के पीछे सुरक्षित और अछूता रहा। साथ ही नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदियों के फैलाव ने भारतीय महाद्वीप के पतले भाग को सुरक्षा–जाल प्रदान किया। केवल बहुत दृढ़ आक्रमणकारी ही सुदूर दक्षिण भारत में पहुँच पाए।

नयी दिल्ली में प्रोद्यौगिकी विकास एवं उत्पादन, डीटीडी एंड पी (वायु), निदेशालय का साक्षात्कार देने के बाद मैंने देहरादून के लिए ट्रेन पकड़ी। यह रेलगाड़ी ऐतिहासिक शहर मेरठ से गुजरती थी, जहाँ 10 मई, 1857 को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई शुरू हुई थी। इस बीच मैं रुड़की में रुका और वहाँ पीरान कलियर की दरगाह पर गया। अलाउद्दीन अहमद साबिर कलियरी साहब 13वीं शताब्दीड़ के चिश्तीर समुदाय के सूफी संत थे। जब मैं देहरादून के क्लेमेंट टाऊन स्थित वायु सेना के चयन बोर्ड (1एएफएसबी) के समक्ष पेश हुआ तो खुद को शांत और आध्यात्मिक ऊर्जा से भरा हुआ महसूस किया।

मैंने बहुत आसानी से परीक्षण का पहला चरण पार कर लिया जो कि बौद्धिक (आईक्यू) परीक्षण था। इसके अलावा पहले दिन कई अन्य परीक्षाएँ ली गईं। दूसरे चरण के लिए 25 उम्मी. दवार चुने गए। पाँच दिनों तक चलने वाले इस द्वितीय चरण की परीक्षा में मनोवैज्ञानिक–परीक्षण और समूह–परीक्षण होना था। मैं सभी परीक्षण में सफल रहा। अंत में अन्य उम्मीदावारों के साथ मेरा भी साक्षात्कार हुआ। दूसरे चरण के परीक्षण के 25 उम्मीदवारों में मेरा स्थान 9वाँ रहा और इनमें से आठ अधिकारियों का चयन होना था। इससे मैं बहुत निराश हो गया, यहाँ तक कि मुझे सदमा लग गया। वायु सेना में शामिल होने का मौका मेरे हाथ से निकल गया, इसे भूलने में मुझे काफी वक़्त लगा।

मैं हताश और अपना उद्देश्य खोने–जैसा महसूस कर रहा था, दिल्ली जाने से पहले मैंने कुछ समय ऋषिकेश में बिताने का फैसला किया। मैंने गंगा में स्नान किया और थोड़ी दूर पहाड़ी पर स्थित शिवानंद आश्रम चला गया। वहाँ मेरी मुलाकात स्वोमी शिवानंद जी से हुई। स्वामी जी ने मेरे मुस्लिम नाम पर कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की और मेरे कुछ कहने से पहले ही उन्होंने मुझसे मेरे दुखों का कारण पूछा। मैंने उन्हें वायु सेना में शामिल होने की अपनी असफल कोशिश तथा लंबे अरसे से अपने उड़ने के सँजोये सपने के बारे में बताया। मैंने कहा– "स्वामी जी, मेरा सँजोया सपना चकनाचूर हो गया।"

स्वामीजी ने मुझसे कहा, "जीवन को उसी तरह स्वीकार करो जैसे वह आगे बढ़ता हैः अपने भाग्य को स्वीकार करो और अपने जीवन के साथ आगे बढ़ो। तुम्हारे भाग्य में वायु सेना का पायलट बनना नहीं लिखा था। तुम्हारे भाग्य में 'तुम्हें क्या बनना है', वह अभी स्पष्ट नहीं है लेकिन सही समय आने पर यह स्पष्ट हो जाएगा। इस असफलता को भूल जाओ, इसका अपना उद्देश्य तुम्हें तुम्हारी तकदीर के पथ पर ले जाने का हो सकता है। अपने आपको सँभालो, यही तुम्हें करना है, बाकी अपने आप होगा।

ईश्वर में विश्वास रखो और अपना जीवन बिना डर के ईश्वर की इच्छा के साथ जियो। एक विश्वसनीय व्यक्ति निरंतर अपने दिन और रात का अधिकांश भाग अपने आस–पास रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति से बेहतर भविष्य की आशा में गुजारता है। वह लोगों की सामान्य परंपराओं से परे जाता है और इसलिए प्रथागत व्यवस्था जरूर उसके लाभ के लिए पुनव्यवस्थित होगी। तुमको कुछ ऐसे स्रोतों से प्रावधान मिलेगा जिसकी तुमने कभी कल्पना नहीं की होगी, जिसे तुम्हें पेश किया जाएगा और स्वीकार करने का आदेश दिया जाएगा।

आश्रम छोड़ने के बाद भी स्वामी जी के शब्द मेरे साथ ऐसे लगे थे जैसे वे मेरे जेहन में दर्ज हो गए हों। मैं हिमालय की तलहटी को, ऋषि–मुनियों की पवित्र भूमि को छोड़ने के लिए तैयार था, और अधिक लौकिक संसार में वापस आने के लिए तैयार था। शायद इस रास्ते् के लिए मैंने कभी योजना नहीं बनाई थी, तब भी ट्रेन से वापस दिल्ली आते वक्त मैंने खुद को अपने तकदीर द्वारा तय किए गये रास्ते पर चलने के लिए तैयार कर लिया था।

४

सांसारिक चक्कर

"प्रायः इस बात की आशंका होती है कि मुझ जैसी पृष्ठभूमि का व्यक्ति जो कि ग्रामीण-परिवेश अथवा कस्बाई-इलाके और मध्यम-वर्गीय परिवार से संबंध रखने वाला हो, साथ ही जिसके माता-पिता अल्प-शिक्षित हों, एक कोने में सिमटकर रह जाएगा और आजीवन अपने अस्तित्व-मात्र के लिए संघर्ष करता रहेगा जब तक कि उसके हालात में कोई करिश्माई बदलाव न हो जो कि उसे अधिक उपयुक्त वातावरण प्रदान कर सके। मुझे इस बात का इल्म था कि- मुझे अपना रास्ता खुद बनाना होगा यानी अपने लिए अवसर खुद पैदा करने होंगे।"

मैं दिल्ली लौट आया तथा प्रोद्यौगिकी विकास एवं उत्पादन (वायु) निदेशालय में मैंने नौकरी कर ली। मुझे यहाँ तकनीकी सेंटर (Civil Aviation–नागर विमानन) में काम दिया गया। यह संगठन सेना के वायुयानों, वातानीत प्रणाली (Airborne Systems) और अन्यय वै. मानिकी उपकरणों का क्षेत्र निरीक्षण करता था। वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक (एस.एस.ए.) के रूप में मैं वायुयानों के निरीक्षण के बाद उनको उड़ान योग्यता का प्रमाण पत्र देता था। इसके लिए मुझे 250 रुपये प्रति माह प्रारंभिक वेतन मिलता था। उड़ान योग्यता किसी वायुयान के सुरक्षित उड़ान का पैमाना है। ऐसे आदमी के लिए जो पायलट बनने का सपना सँजोया हो, यह बहुत ही नि. राशाजनक काम था। मैंने यह निर्णय लिया कि अब अधिक दिनों तक मैं देहरादून की असफलता का रोना नहीं रोऊँगा। यद्यपि मैं विमान नहीं उड़ा रहा था, फिर भी उन्हें सुरक्षित उड़ने में तो मदद कर ही रहा था।

कुछ दिनों के बाद वायु सेना में न जाने की असफलता का उपचार मैंने अपना चेहरा शीशे में देख-देख कर लिया। यह समय मेरे लिए था, मैं यह महसूस करने लगा कि मैं किस लिए हूँ, और मैंने खुद को साधारण इनसान बना लिया। क्योंकि हम मनुष्यों का प्रादुर्भाव एक नापाक या गंदे कतरे से नहीं होता? और क्या हमारा अंत हमारी लाश को आग में जलाकर या मिट्टी में दफनाकर नहीं किया जाता? अतः अपनी वस्तुस्थिति को पूरी तरह समझते हुए विनम्रतापूर्वक मैंने अपना काम एक सैनिक-जैसे अनुशासन और एक संत-जैसे धैर्य के साथ शुरू कर दिया।

फिर भी, मैं इस समय अपने में रचनात्मक ऊर्जा की कमी महसूस कर रहा था और हैरान था कि क्या यह मेरे लिए काम करने का सही मार्ग है!

मैं अपने को काम में काफी व्यस्त रखता था ताकि सोचने का वक़्त न मिले। कुछ महीनों के बाद मुझे वायुयान एवं आयुध परीक्षण इकाई (ए एंड एटीयू), कानुपर भेजा गया। वहाँ मुझे ब्रिटिश फोलैंड नैट (Folland Gnat) के उष्ण कटीबंधीय विकास की परियोजना में शामिल होना था। यह एक सीट वाला, हलका, जमीन पर मार करने वाला, अवरोधक लड़ाकू विमान था जिसे भारतीय वायु सेना में शामिल किया जाना था।

उन दिनों भी कानपुर भीड़-भाड़ वाला, काफी चलता-फिरता शहर था, और आराम-तलब नहीं था। सर्दियों के मौसम में उत्तर भारत के किसी शहर में ठहरने का भी मेरा पहला अनुभव था। एक ऐसे नौजवान आदमी के लिए जो उष्णशकटीबंधीय क्षेत्र से आया हो और जो वर्षों तक गर्म मौसम का अभ्यस्त रहा हो, यहाँ की कड़कड़ाती ठंड एक तरह से बड़ा झटका था। तब चावल खाने का अभ्यस्त था मैं, यहाँ हर भोजन में आलू के पकवान मेज पर देखकर खासतौर से परेशान था।

कानुपर में बहुत लोगों के बीच होने के बावजूद मैं अकेलापन महसूस करने लगा। कभी-कभी इस तरह का अकेलापन बड़े शहरों में आदमी महसूस करता है। कानपुर की फैक्ट्रियों में काम की तलाश में गाँवों से आने वाले लोग सड़कों पर नजर आते थे। ये लोग अपने पीछे अपनी मिट्टी की खुशबू और अपने परिवार की सुरक्षा को छोड़कर यहाँ अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु आते थे। मैं इन लोगों के हालात पर हैरान था कि कैसे इन लोगों को परेशान किया जा सकता है। ये लोग भी दयालु और पालनहार ईश्वर के उत्कृष्ट सृजन हैं, जो सांसारिक जरूरतों के चक्कर में नाममात्र के संसाधन पर जीवित हैं।

कानपुर में कुछ लोगों से बातचीत के बाद मैंने अखबार, खासकर संपादकीय पृष्ठ पढ़ने की आदत डाल ली। मैं चीन और भारत के बीच पैदा हो रहे तनाव के बारे में सचेत हो गया। चीन की सेना द्वारा प्रताड़ित किए जाने के बाद तिब्बत के शासक (धर्मगुरु) दलाईलामा 30 मार्च, 1959 को भारत की सीमा पर पहुँच गए। भारतीय सिपाहियों ने उन्हें वर्तमान अरुणाचल प्रदेश के बोमडिला में अपने संरक्षण में ले लिया। भारत सरकार ने उन्हें और उनके अनुयायियों को भारत में शरण देने पर अपनी सहमति पहले ही जता दी थी। शीघ्र ही हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला मंण निवार्सित तिब्बत सरकार की स्थापना भी हो गई।

दलाई लामा की समस्या का असर मुझे पूरी दुनिया की स्थिति पर पड़ता दिखाई दिया। शांति और पूजा करने वाले लोग क्यों बर्बर सैन्य-बल द्वारा प्रताड़ित किए जाते हैं? क्या विकास

ने प्राकृतिक रूप से मानव को शांतिप्रिय बनाया है या फिर इसे स्वाभाविक रूप से और अधिक हिंसा की ओर उन्मुख किया है?

> "आपको किसी भी हाल में मानवता के प्रति अपना विश्वास नहीं खोना चाहिए। मानवता महासागर है। अगर महासागर की कुछ बूँदें गंदी हो जाती हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि पूरा महासागर ही गंदा है!"

जैसा मैंने देखा आदमी न सिर्फ अपनी जाति के खिलाफ आक्रमकता का प्रदर्शन करता है बल्कि वह इस धरती के पारिस्थितिकी को भी बर्बाद कर रहा है। अल्जीरिया के सहारा मरूस्थल में 13 फरवरी 1960 को फ्रांस ने पहला परमाणु परीक्षण किया। इसका कोड नाम Gerboise Bleue (Blue Desert Rat– ब्लूक डिजर्ट रैट) था। इसका विस्फोटक क्षेत्र कोई 70 किलोमीटर था। यह अमेरिका द्वारा 6 अगस्त, 1945 को जापान के हिरोशिमा में गिराए गये परमाणु बम 'लिटिल ब्वॉय' की तुलना में चार गुना अधिक शक्तिशाली था। इस परमाणु परीक्षण से अल्जी. रिया में भारी पर्यावरणीय नुकसान हुआ, पहले से हवा के कटाव के कारण प्रभावित रेत–टीलों की गतिविधियों में भी परिवर्तन हुआ। विस्फोट के फलस्वरूप विकिरण के कारण वहाँ के जानवरों और जैव विविधता पर असर पड़ा। अनेक पक्षी और स्थानीय सरिसृप की प्रजातियाँ लुप्त हो गईं। आदमी कैसे अपनी धरती और अपनी प्रजाति पर इस तरह का कहर बरपा सकता है!

इस तरह की बातों पर सोचते हुए मैंने अपनी अकेले कई रातें बिता दीं। इस प्रश्न का उत्तर जानने की मेरी उम्र नहीं थी, फिर भी यह सवाल मेरे जेहन में हलचल मचा रहा था। मैं देख पा रहा था कि हिंसा, समझौता और सहयोग सभी मानव प्रकृति के अंग हैं। मैं यह भी समझ गया था कि मनुष्य की क्रमागत उन्नति न सिर्फ मनुष्य को हिंसक या शांतिपूर्ण बनाता है बल्कि यह उसमें विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार ढलने के लिए लचीलापन भी लाता है– और जरूरत पड़ने पर जब उसे लगता है कि हिंसक होना उसके अनुकूल है तो वह ऐसी स्थिति में यह भी खतरा मोल लेता है। मुझे इस बात का दुःख हुआ कि भोजन की खोज के लिए लोग प्रतिस्पर्धा की बजाय तेल और खनिज पदार्थो जैसे भौतिक चीजों के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, जबकि दुनिया के ज़्यादातर हिस्सों में भोजन प्राप्त करना अपेक्षाकृत ज़्यादा आसान है।

कानपुर में रहने के दौरान मेरा दायरा बड़ा हो गया लेकिन ज़्यादा दिन बीतने से पहले ही मेरा काम मुझे मेरे परिचित दक्षिण भारत में वापस ले गया। एचएएल द्वारा 1950 और 1960 के दशक में कई वैमानिकी परियोजनाएँ शुरू की गईं। एचएल को अनुसंधान एवं विकास–संबंधी सहयोग देने के लिए 1959 में बंगलौर (अब बंगलुरू) में वैमानिकी विकास प्रतिष्ठीन (एडीई) की स्थापना की गई। विभिन्न संगठनों में काम करने वाले वैमानिकी इंजीनियरों को नये संगठन की कोर टीम बनाने और सैन्यर–उड्डयन को समर्थन देने के लिए बुलाया गया। इन इंजीनियरों में मैं भी शामिल था। हम लोगों को भारतीय वायु सेना को उपकरण उपलब्धथ कराने का काम दिया गया था।

जब मैं एडीई (वैमानिकी विकास प्रतिष्ठान) में प्रवेश कर रहा था तब 'एयर इंडिया इंटरनेशनल' जेट युग में प्रवेश कर रहा था। एयर इंडिया इंटरनेशनल ने 21 फरवरी, 1960 को बोईंग 707-420 वायुयान खरीदने वाला एशिया का पहला एयरलाइन बन गया जिसके बेड़े में जेट वायुयान था। इसी साल 14 मई को लंदन होते हुए न्यूयार्क इंटरनेशनल एयरपोर्ट और एंडरसन फील्ड (बाद में जे.एफ.के. इंटरनेशनल एयरपोर्ट) के लिए हवाई सेवा शुरू की गई। 8 जून, 1962 को 'एयर इंडिया इंटरनेशनल' का नाम आधिकारिक तौर पर संक्षिप्त करके 'एयर इंडिया' कर दिया गया। 11 जून, 1962 को 'एयर इंडिया' दुनिया का पहला ऐसा एयरलाइन बन गया जिसके बेड़े के सभी विमान 'जेट विमान' थे।

भारत 1960 की शुरुआत में दुनिया में वैज्ञानिक देश के रूप में अपना कदम रखना शुरू कर दिया था। इस समय तक देश में पाँच भारतीय प्रोद्यौगिकी संस्थादनों (IITs) की स्थापना हो चुकी थी। सबसे पहले खड़गपुर में 1950 में, बंबई (मुंबई) में 1958 में, मद्रास (चेन्नई) एवं कानपुर में 1959 में और दिल्ली में 1961 में भारतीय प्रोद्यौगिकी संस्थ्ानों की स्थापना हुई। इन संस्थानों को वास्तव में विश्व-स्तरीय बनाने के लिए शैक्षिक अधिकारी वर्ग ने विदेशों से मदद माँगी। सोवियत रूस ने मुंबई आईआईटी की स्थापना में सहयेाग दिया। अमेरिका ने आईआईटी, कानपुर की स्थापना में मदद की। जर्मनी का व्यापार अधिशेष काफी था अतः उसे दक्षिण भारत में आईआईटी की स्थापना करने में मदद के लिए राजी किया गया। शुरू-शुरू में जर्मन सरकार बंगलौर (बंगलुरू) में संस्थान की स्थापना के लिए इच्छुक थी। लेकिन तत्कालीन शिक्षा मंत्री सी. सुब्रह्मण्याम ने जर्मन प्रतिनिधि को नये परिसर के लिए 'गवर्नर्स एस्टेट' देकर मद्रास में संस्थान स्थापित करने के लिए राजी कर लिया। 'यूनाइटेड किंगडम सरकार' और 'फेडरेशन ऑफ ब्रिटिश इंडस्ट्रीज' की मदद से आईआईटी, दिल्ली् की स्थापना की गई।

मैंने 'बगीचों के शहर' बंगलौर (बंगलुरू) को रहने के लिए सबसे अच्छा पाया। यह भीड़-भाड़ और प्रदूषित 'कानपुर' तथा कुलीनों और अभिमानियों के शहर 'दिल्ली' से विपरीत था। इस समय तक मैंने भारतीय समाज के 'अनेकतावाद' का अंतरराष्ट्रीयकरण कर दिया था। भारत के पास अपने लोगों से चरम प्राप्त करने का एक अलौकिक रास्ता था। ऐसा मेरा अनुमान था, क्योंकि भारतवासी सदियों से हुए विस्थापन से पीड़ित भी रहे और इससे लाभान्वित भी हुए। जीवन रक्षा नीति के रूप में भारतीयों ने सब कुछ एक ही समय में- दयालु व निर्दय होने, भावुक और कठोर होने, गंभीर और चंचल होने की असाधारण क्षमता अपने में विकसित कर ली थी। जातिवाद और विभिन्न शासकों के प्रति वफादारी ने भी लोगों को 'एक होने' की चाहत को कमजोर किया था। अभी-भी भारत को एक आधुनिक, संगठित राष्ट्र बनाने का काम प्रगति पर था और यह कष्ट देने के हद तक धीमा था। हमारे विभाजन ने हमें कमजोर कर दिया था- इसका पता राष्ट्र को जल्दी ही चल गया।

> "संघर्ष की अनुपस्थिति शांति नहीं है, यह संघर्ष को शांतिपूर्ण साधनों से नियंत्रण करना है।"

भारत और चीन के बीच सीमा विवाद ने 21 सितम्बर,1962 को बड़े पैमाने पर युद्ध का रूप ले लिया। इसकी शुरुआत चीन द्वारा लद्दाख पर भारी आक्रमण और मैकमोहन रेखा को पार करने के साथ हुई। 'मैकमोहन रेखा' 1914 में ब्रिटेन और तिब्बत के बीच हुए समझौते के अनुसार मानचित्र पर क्षेत्रीय सीमा की लाइन थी। चीन से तिब्बत के अलग हो जाने के बाद मैकमोहन रेखा भारत और चीन के बीच प्रभावी सीमा रेखा थी। भारत और चीन के बीच लड़ाई भारत के लिए शर्मनाक थी, क्योंकि चीन की सेना बहुत तेजी से मैकमोहन रेखा को पार कर भारतीय क्षेत्र में प्रवेश कर गयी। सोवियत संघ, अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के द्वारा भारत को सैन्य–सहायता देने का वादा करने के बाद चीन ने अपनी सेना वापस बुला ली, और 19 नवंबर, 1962 को युद्ध समाप्त हो गया।

यह युद्ध स्वयं तैयारी करके, गैर–मुस्तैद लोगों पर जर्बदस्त ढंग से थोपा जानेवाला युद्ध था, जिसे आगे चलकर पाठ्यक्रम में पढ़ाया जा सके। भारत की हार का कारण भारतीय सेना में जवानों की संख्या चीन की तुलना में कम (शायद आठ के मुकाबले एक) होना नहीं था, बल्कि यह भारत के बकवादी नेताओं के बीच विभाजन तथा आपसी कलह के शिकार जनरलों का मामला था। इसके विपरीत चीन का नेतृत्व् संगठित और निर्णायक था।

भारत और चीन के बीच हुए युद्ध का मेरे ऊपर गहरा असर इसलिए पड़ा कि 'कम–से–कम भारत अपनी सीमा की रक्षा की तैयारी कैसे करे!', उसे सबक मिल गया। देश की स्थल सीमा 15,107 किलोमीटर तक फैली और सात देशों के साथ लगी हुई है। इनमें कुछ देशों के हमारे साथ प्रतिर्स्पधात्मक हित हैं– हो सकता है एक समय ऐसा आए जब वे आतंकियों को पनाह दें! इस स्थिति की माँग है कि हमारा सशस्त्र बल उचित तरीके से साजो–सामान से सुसज्जित और हमेशा मुकाबले के लिए तैयार रहे। कूटनीति और नैतिक आचरण भी जरूरी है क्योंकि 'इनके बगैर एक राष्ट्र उसी तरह है जैसे इनके बगैर कोई व्यक्ति।' लेकिन हमें प्रकृति के इस मौलिक सिद्धांत को कभी नहीं भूलना चाहिए– "शक्ति ही शक्ति का आदर करती है।"

"स्वीकारोक्ति और धैर्य का कोई विकल्प नहीं है।"

अपने देश की सुरक्षा के लिए व्यापक चिंता की पृष्ठभूमि में मेरी 'जन्नत यात्रा' की शुरुआत हुई। परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत एक नये संगठन भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समि. ति (आई.एन.सी.ओ.एस.पी.ए.आर.–INCOSPAR) की स्थापना 1962 में की गई। इस समिति की स्थापना के पीछे भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (पीआरएल), अहमदाबाद के निदेशक डॉ. विक्रम साराभाई का हाथ था। इस संगठन को भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम तैयार करने का काम दिया गया।

डॉ. साराभाई ने अंतरिक्ष कार्यक्रम को आगे बढ़ाने और पोषण करने की कोशिश में कई भूमिका निभाई। वे भ्रमणशील राजनयिक, शिक्षक, रणनीतिकार, मित्र, सलाहकार, नेता और प्रणाली विकसित करने वाले व्यक्ति थे। भारत में, उनकी अप्रत्याशित वैज्ञानिक संगठन की प्रतिष्ठा, कुलीन पृष्ठभूमि और सादगी, वफादरी का सृजन करते थे। जिससे परिचितों के बीच उनकी निष्ठा बढ़ जाती थी।

'टाटा इंस्टीनट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' के अंग के रूप में आई.एन.सी.ओ.एस.पी.ए.आर. (INCOSPAR) ने प्रो. एम.जी.के. मेनन के नेतृत्व् में अपना काम करना शुरू किया। इसका सबसे पहला काम अच्छे लोगों को आकर्षित कर उनमें आवश्यक कौशल और योग्यता विकसित करना था। यही कारण था कि प्रो. मेनन बंगलुरू के ए.डी.ई. आए, जहाँ उन्होंने मुझसे बातचीत की और संगठन में शामिल होने को कहा।

आई.एन.सी.ओ.एस.पी.ए.आर. का पहला उद्देश्य, केरल के थुम्बान में एक "मॉडेस्ट साउंडिंग रॉकेट लॉन्चिंग इंस्टाचलेशन" स्थापपित करना था जो एकदम स्पष्ट था। वहाँ से अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय को डाटा संग्रह करने की सुविधा प्रदान करने की भी व्यवस्था थी। यद्यपि शुरू में यहाँ उपग्रह और "सेटेलाइट लॉन्च् व्हीकल" विकसित करने का जिक्र नहीं था, लेकिन डॉ. साराभाई के जेहन में यह बात जरूर रही होगी। भूमध्य रेखा के अति निकट और समुद्रतट पर होने के कारण थुम्बा "जियोस्टेशनरी सेटेलाइट (भूस्थैकतिक उपग्रह)" के लॉन्चिंग के लिए आदर्श स्थान था।

> "मानव की प्रगति न तो स्वतः होने वाली है और न ही अवश्यंभावी है... प्रत्येक आगे के कदम के लिए समर्पित व्यक्तियों का त्याह, अथक परिश्रम और भावनात्मक रुचि जरूरी है।"

'थुम्बाट' मछुआरों की छोटी बस्ती के रूप में जाना जाता था। यहाँ से तकरीबन ढाई किलोमीटर दूर करीब 250 हेक्टेकयर भूखंड की पहचान की गई। इस भूखंड के भीतर पल्लीथुरा में सेंट मैरी मैगडेलेन (Sent Mary Magdalene) का प्राचीन चर्च और बिशप का निवास स्थान भी था। इस स्थान को हासिल करने के लिए डॉ. साराभाई ने राजनेताओं से लेकर नौकरशाहों तक से मदद माँगी, लेकिन उनकी सारी कोशिश नाकाम हो गयी। सफलता के दृढ़ निश्चंय और अपने मिशन की पवित्रता से निश्चिंत होकर, प्रो. साराभाई ने बिशप से मिलकर इस मामले पर खुद ही बात करने का फैसला किया। उस समय माननीय फादर पीटर बर्नार्ड परेरा (Peter Bernard Pereira) वहाँ बिशप थे। एक शनिवार को प्रो. साराभाई उनसे मिले। बिशप ने उनकी बातों को धैर्यपूर्वक सुना और उनसे दूसरे दिन रविवार को सामूहिक सभा में आने को कहा, जहाँ उन्होंने अपने समुदाय के लोगों के समक्ष प्रो. साराभाई का मामला रखने की बात कही।

दूसरे दिन रविवार को सामूहिक सभा में बिशप ने कहा, "मेरे बच्चो, मेरे साथ एक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक हैं, जो हमारे चर्च और मेरे निवास–स्थान को अंतरिक्ष विज्ञान अनुसंधान के काम हेतु चाहते हैं। यह सच है कि विज्ञान मानव जीवन को समृद्ध बनाता है। वह जो कर रहे हैं और मैं जो कर रहा हूँ, एक ही काम है। छः महीने के भीतर हमारा चर्च और निवास स्थान नया बनाकर हमें मिल जाएगा। बच्चो, क्यो हम प्रभु यीशू का यह निवास, अपना निवास स्थान और आपका निवास स्थान उन्हें एक वैज्ञानिक मिशन के लिए दें दें?"

कुछ क्षणों के लिए सभा में एकदम शाति छा गई और फिर अचानक 'आमीन' की आवाज से चर्च गूँज उठा।

बिशप और उनके समुदाय के लोगों का एक महान कार्य के लिए अपनाया गया गर्मजोशी–भरा रुख अगले दशकों तक राष्ट्र को लाभ पहुँचा रहा है।

हमारा दल उस स्थल पर काम करने और जो कुछ वहाँ हमारे उद्देश्य के लिए उपलब्ध था, उसके इस्तेमाल के लिए रवाना हो गया। थुम्बान एक्वाशटोरियल रॉकेट लॉन्चिंग स्टेशन (टी.ई.आर.एल.एस.) जल्दी ही बन गया और काम करने लगा। हमारा यह सबसे पहला अंतरिक्ष कार्यक्रम छोटा नहीं था बल्कि थोड़ा फैंसी था। चर्च बिल्डिंग को वैज्ञानिकों का मुख्य कार्यालय बनाया गया। बिशप के निवास स्थान को कार्यशाला में तब्दील कर दिया गया। और यहाँ तक कि एक पशुशाला को साउंडिंग रॉकेट प्रयोगशाला बना दिया गया।

टी.ई.आर.एल.एस. को स्थापित करना हम लोगों के लिए बहुत बड़ा काम था। सुविधाओं के निर्माण की जरूरत थी और हमें खुद ही एक अपरिचित प्रौद्योगिकी के काम को तेजी से आगे बढ़ाना था। जबकि एक तरह से यह जूते का फीता बाँधने जैसा प्रयास करने का काम था, हमारे काम करने की उत्कंठा हमारे प्रयास को बढ़ावा देती थी। काम करने का कोई नियत समय नहीं था, और थुम्बा के वैज्ञानिकों के बीच यह सामान्य कोशिश होती थी कि वे दिन में अधिक–से–अधिक काम निपटा लें, काम सिर्फ शाम को अंतिम बस पकड़ने के लिए ही रुकता था। देर रात्रि पाली के वैज्ञानिकों को ले जाने के लिए प्रबंधन ने एक जीप का इंतजाम कर दिया था।

इस बीच जब सुविधाओं का निर्माण हो रहा था, सात रॉकेट इंजीनियरों को अमेरिका में नासा (NASA) प्रशिक्षण के लिए भेजने का निर्णय लिया गया। इन चुने गये सात इंजीनियरों में से मैं भी एक था।

५

कोवा से तितली

> "अमेरिका का निर्माण साहस, कल्पना और दिए गये काम को पूरा करने के अपराजेय दृढ़ संकल्प से हुआ है।"

चार इंजीनियरों का हमारा एक दल मार्च, 1963 में वर्जीनिया में स्थित लैंजली रिसर्च सेंटर (एलएआरसी) पहुँचा। इस केन्द्र में वैमानिकी एवं अंतरिक्ष उड़ान से संबंधित कई क्षेत्रों में बुनियादी अनुसंधान का काम होता था। इस केन्द्र को लुनर ऑर्बिटर और विकिंग प्रोजेक्ट तथा स्काउट लॉन्च व्हैकिल के प्रबंधन की जिम्मेदारी दी गई थी। हम लोग इस केन्द् से संबंधित छात्रावास में रहते थे और वहीं के कैफेटेरिया में खाना खाते थे। हम लोग कैफेटेरिया के मांसाहारी भोजनों में शाकाहारी भोजन तलाशते थे। इस कैफेटेरिया में सेल्फ सर्विस की व्यवस्था थी। आलू का भर्ता, उबले हुए बीन या मटर ब्रेड और ढेर-सारा दूध मेरा भोजन हुआ करता था।

एलएआरसी में में प्रशिक्षण समाप्त कर हमलोग मैरीलैंड के गोडार्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर (जीएसएफसी) गए। इस केन्द्रों का नाम रॉकेट विचारक और इसके आविष्कारक डॉ. एच. गोडा. र्ड के नाम पर रखा गया था। डॉ. गोउार्ड पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने द्रव ईंधन वाले रॉकेट का प्रक्षेपण (लॉन्च) मार्च 1926 में किया था। गोडार्ड स्पेइस फ्लाइट सेंटर में मानवराहित अंतरिक्ष यानों और साउंडिंग रॉकेट पर प्रयोग होते थे। यहाँ विश्व-भर में होने वाले अंतरिक्ष उड़ान के डाटा की निगरानी (एसटीएडीएन) पर भी काम होता था। एसटीएडीएन बाद में अन्तरिक्ष डड़ान निगरानी एवं डाटा नेटवर्क (एसटीडीएन) हो गया। इस केन्द् से थोर डेल्टा लॉन्च व्हैकिल के विकास का काम हो रहा था।

हमारे प्रशिक्षण की अंतिम कड़ी में हमें वर्जीनिया के वैलोप्स द्वीप स्थित वैलोप्स फ्लाइट सेंटर में तैनात किया गया। एफसी एकमात्र रॉकेट फ्लाइट-टेस्ट रेंज एकमात्र ऐसा केन्द्र था जो

नासा का अपना था। पूरे अमेरिका और विश्व-भर के वैज्ञानिकों और इंजीनियरों द्वारा विकसित उपकरणों के सहारे प्रयोग के लिए स्काउट बूस्टर और साउंडिंग रॉकेट लॉन्च् करता था।

हम लोगों का अमेरिका दौरा बहुत कामयाब नहीं रहा। सप्ताह के अंतिम दिन हम लोग नासा के पुराने डकोटा हवाई जहाज से वाशिंगटन डीसी जाया करते थे। यह हवाई जहाज नासा के कर्मचारियों को मुफ्त में ले जाता था। उस समय वाशिंगटन के होटलों में नासा कर्मचारियों के लिए रियायती दर पर कमरे दिए जाते थे लेकिन तब भी यह दर प्रति रात्रि छः डॉलर थी जो हमलोगों के लिए काफी महँगी थी। हमलोग पैसे बचाने के लिए पूरी रात जागकर वाशिंगटन में घूमा करते थे और फिर सुबह की फ्लाइट पकड़कर वापस वैलोप्स आ जाते थे।

> “अंतरिक्ष की खोज के लिए ईश्वर ने मानव के लिए कोई सीमा नहीं तय की है।”

मेरे थुम्बां लौटने के तुरंत बाद ही 21 नवंबर को वेपर क्लाउड पेलोड वाला अपाचे रॉकेट लॉन्च किया गया। और इसी के साथ भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत हो गई। इसके बाद रूसी एम-100 और फ्रेंच सेन्टॉर साउंडिंग रॉकेट लॉन्च किए गये। एम-100, 70 किलो ग्राम का पेलोड 85 किलोमीटर की ऊंचाई तक ले जा सकता था जबकि फ्रेंच सेन्टॉर 30 किलोग्राम पेलोड को 150 किलोमीटर की ऊँचाई तक।

थुम्बा में अभी-भी जरूरी बुनियादी सुविधाएँ ही उपलब्ध थीं। लॉन्च पैड बनाया जा रहा था। वहाँ सिर्फ एक ही वाहन था और ऐसे में हमलोगों को पैदल ही या फिर साइकिल से रेंज में इधर-उधर जाना पड़ता था। मैं साइकिल चलाना नहीं जानता था इसलिए मैं किसी के 'साथ पीछे बैठ जाया करता था। यहाँ तक कि हमलोग रॉकेट के पार्ट-पुर्जे या पेलोड भी साइकिल के फ्रेम में बाँधकर परिसर में ले जाते थे।

एक बार जब हमलोग विदेशी रॉकेट लांच करने लग गये तो हमारा काम अब अपने देश में डिजाइन किए गये आधुनिक रॉकेट बनाने का था। एक अर्थ में यह एक तरह की ऐतिहासिक बराबरी थी। दक्षिण भारत में बने रॉकेटों ने दुनिया को सबसे पहले प्रभावित किया था। हैदर अली और टीपू सुल्ताबन के शासन काल के दौरान 18वीं शताब्दी में हजारों मैसूरी रॉकेट, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के खिलाफ सफलतापूर्वक तैनात किए गये थे। इनकी चमक और इनके द्वारा किया जाने वाला विनाश खतरनाक था।

लेकिन हम जो रॉकेट बनाने की योजना बना रहे थे उसका उद्देश्य भिन्न था। इसके पेलोड में अनुसंधान के उपकरण रखे जाने थे जिसे रॉकेट को ऊपरी वायुमंडल के सब-ऑरबिटल क्षेत्र में ले जाना था ताकि वैज्ञानिक डाटा संग्रह किए जा सकें। हमारे पहले साउंडिंग रॉकेट का नाम था आरएच75- आरएच का मतलब था रोहिणी रॉकेट श्रृखंला और '75' का अर्थ था इसका व्यास जो कि 75 मिलीमीटर था। यह 1.5 मीटर लंबा रॉकेट था। इतना छोटा कि दूर से पेंसिल जैसा लगता था। आरएच-75 ने 20 नवंबर, 1967 को पहली बार उड़ान भरी।

टीईआरएलएस से किसी साउंडिंग रॉकेट का केवल 50 सेकेंड का यह लांच था। इसकी दूसरी उड़ान 1967 में ही दोहराई गयी और अन्यस 12 बार 1968 में। कुल मिलाकर आरएच–75 की 15 उड़ानें हुईं। हमारा अभूतपूर्व स्वदेशी रॉकेट एक सफलता का रूप ले चुका था।

इसके अलावा कई उत्तेजक चुनौतियाँ हमलोगों के सामने थीं। नासा एप्लीकेशन तकनीकी सेटेलाइट (एटीएस) की एक श्रृंखला लान्च करने की योजना बना रहा था। एटीएस जियोस्टेशनरी कक्ष में स्थापित किए जाने थे जहाँ से वे संचार, मौसम एवं नौसंचलन के लिए काम करते। नासा ने एक एटीएस का फील्ड परीक्षण करने की जरूरत का जिक्र किया था जो सेटेलाइट से टेलीविजन के सीधे प्रसारण में शामिल था। उस समय मूमध्यकरेखा के पास के जो तीन सबसे बड़े और करीब के देश, जहाँ से सीधे प्रसारण के लिए जियोस्टेशनरी सेटेलाइट का परीक्षण किया जा सकता था वे थे– ब्राजील, चीन और भारत। ब्राजील को इसमें रुचि नहीं थी क्योंकि उसकी अधिकांश जनसंख्या कुछ ही शहरों में सिमटी थी। उसके लिए परंपरावादी टेलीविजन प्रसारण तकनीक ज़्यादा अच्छी थी। राजनीतिक कारणों से चीन में इस तरह के परीक्षण होने का सवाल ही नहीं उठता था। ऐसे में एटीएस के लिए भारत ही एकमात्र विकल्प बचता था। इसकी जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक था, फिर भी केवल दिल्ली में ही एक टेलीविजन ट्रांसमीटर लगा था और वह भी छोटा–सा। यह ट्रांसमीटर जर्मनी की एक इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनी एक शो के बाद यहाँ छोड़ गई थी।

> “आओ, दोस्तो!
> नयी दुनिया की तलाश के लिए अभी-भी
> कोई ज़्यादा विलंब नहीं हुआ है।”

डॉ. साराभाई ने इस अवसर को बहुत ही बुद्धिमता से अपनी ओर कर लिया। उन्होंने नासा से कहा कि आईएनसीओएसपीआर को एक साल के लिए एक एटीएस, भारत के गाँवों में परीक्षण के लिए दे दीजिए। देश को इस बात का विश्वास दिलाने में वह बहुत ही बड़ा अवसर देख रहे थे कि अंतरिक्ष तकनीक में भारी निवेश किया जाए। वह बहुत अच्छी तरह जानते थे कि आईएनसी. ओएसपीएआर (INCOSPAR) के लिए अमेरिका से सिस्टम की बुनियादी तकनीक सीखने का यह एक अनुपम अवसर है। यह इस तकनीक के क्षेत्र में समस्त भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की पीढ़ी के लिए अमूल्य अवसर था जिसकी शुरुआत की जानी थी। इसके साथ ही संगठन अपना उपग्रह बनाने के लिए भी सिस्टम मैनेजमेंट पाठ प्राप्त करता।

डॉ. साराभाई के आश्वासन पर भारतीय परमाणु विभाग और नासा ने उपग्रह निर्देशात्मनक टेलीविजन प्रयोग (सेटैलाइट इंस्ट्रावक्शनल टेलीविजन एक्स पेरिमेंट– एसआईटीई) के लिए 1966 में हस्तातक्षर किए।

इस विकासक्रम से भारतीय सरकार ने राष्ट्र निर्माण में अंतरिक्ष संचार की भूमिका को बहुत जल्दी ही पहचान लिया। अहमदाबाद में 1967 में एक एक्सपेरिमेंटल सैटेलाइट कम्युनिकेशन अर्थ स्टेशन (ESCES–ईएससीईएस) की स्थापना की गई। परमाणु ऊर्जा विभाग के तहत 15 अगस्त, 1969 को आईएनसीओएसपीएआर (INCOSPAR) को भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के रूप में अलग कर दिया गया। परमाणु ऊर्जा विभाग प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा बनाया गया।

"विरोधाभासों को समझना जरूरी है। हमेशा आप सुनहरे साधनों के बल पर टिके नहीं रह सकते। बल्कि आपको विशेष पारस्परिक माँगों के बीच तनाव के साथ बिना आराम के भी रहना चाहिए।"

स्वतंत्रता की प्राप्ति ताकत और आत्म निर्णय से होती है। जब देश अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत शून्य से कर रहा था तो हमारे लिए दशकों और पीढ़ियों का लक्ष्य था। डॉ. साराभाई इस बात को देख पा रहे थे कि अगर अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भारत को आगे बढ़ना है तो अंतरिक्ष तकनीक में अग्रणी देशों (Spacefaring Nations) के साथ भागीदारी की श्रृंखला बनानी होगी। इसके बदले में भारत को इन देशों को सहयोग करना होगा। इसके साथ ही समय के साथ कड़ी मेहनत के बल पर भारत संपन्नँ तकनीकी सेक्टर बन सकता है। किसी चीज को पाने के लिए कुछ खोना ही पड़ता है

विक्रम साराभाई के स्वदेशी तकनीक विकसित करने के व्यावहारिक दृष्टिकोण से मैं प्रेरित था। एक अर्थ में देखा जाए तो यह स्वदेशी दर्शन के खिलाफ भी था। ऐसा था फिर भी, उस समय स्वदेशी तकनीक का लक्ष्य। प्राप्त करने का यह बहुत ही प्रभावी और बुद्धिमतापूर्ण साधन था। उन दिनों हम अधिक आत्मनिर्भर न बन जाएँ इसलिए कुछ देश हमारे लिए दुनिया के दरवाजे बंद कर सकते थे। इस बात को डॉ. साराभाई विश्व के समक्ष अपने दरवाजे खोलकर तथा उन्हें विचार–विमर्श के लिए आमंत्रित कर दर्शा चुके थे कि अभी बहुत कुछ किया जा सकता है।

उनका दृष्टिकोण तकनीकी समुदायों के बीच अधिक–से–अधिक सहयोग करना था क्योंकि यह एक अंतरराष्ट्रीय मंडली की तरह थी। डॉ. साराभाई ने जनवरी 1968 में मुझे दिल्ली बुलाया और एक टिपत रेंज में रूसी रॉकेट समर्थित उड़ान सिस्टम–आरएटीओ (Russian Rocket&Assisted Take&Off : RATO) दिखाया। उन्होंतने मुझे और एक वायु सेना के कैप्टन नारायणन को इस रॉकेट को भारत में बनाने की जिम्मेकदारी सौंपी। आरएटीओ सिस्टम छोटे हिमालयी रनवे पर सेना के वायुयानों की मदद के लिए प्रयोग किए जाने थे। इसका विकास कार्य अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी केन्द्र में किया जाना था। यहाँ मैं रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ), एचएएल, डीटीडी एंड पी (वायु) और वायुसेना के मुख्यालय के साथ काम कर रहा था।

यहाँ मैं, एक भारतीय रॉकेट इंजीनियर के रूप में और एक वायु सेना का कप्तान अपने देश के रक्षा प्रतिष्ठान की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय का काम रहे थे। हमारा काम एक रॉकेट डिजाइन करना था जो रूस सरकार ने हमें स्वतंत्र रूप से दिया था। अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के पार और भारतीय संस्थानों के बीच सहयोग के रूप में यह सचमुच ही बहुत बड़ी साझीदारी थी।

मैं हमेशा से ही संस्थानों के मूल्य में विश्वा्स रखने वाला हूँ। मैं मानता हूँ कि सभ्याताएँ अपनी संस्थानों के कारण ही जीवित रहीं। हमारा देश एक के बाद एक हजारों साल के आक्रमण और हाल ही में औपनिवेशिक झटके के बावजूद इसी कारण जीवित रहा। क्योंकि यहाँ के लोग संस्थानों के सदस्य, परिवारों और समुदायों के सदस्य के रूप में रहते आए हैं, न कि व्यक्तिगत रूप से।

हमारी संस्थाओं की शक्ति राष्ट्र और व्यक्ति दोनों के लिए एक समान प्रासंगिक है। भा. रत के लोग अपने जीवन का अर्थ न सिर्फ अपनी व्यक्तिगत शक्ति में पाते हैं बल्कि वे इसे सौहार्दपूर्ण और सामाजिक संबंधों में भी पाते हैं। और सफल होने के लिए यह जरूरी है कि आप अपने परिवार, स्कूल, कॉलेज और कई ऐसे सांसारिक संस्थानों में निश्चित रूप से अपना स्थान हासिल करें जहाँ आपका सामना पेशेवर जीवन से होता है। यह आपका कर्तव्य है कि आप खुद का ख़्याल रखने के साथ आस-पास के लोगों का भी ख़्याल रखें।

मेरे और ग्रुप कैप्टन नारायणन के व्यक्तित्व में बहुत अंतर था लेकिन हम दोनों, संस्थान में गहन प्रशिक्षण के उपज थे। हम दोनों के समक्ष आगे की चुनौती थी। डॉ. साराभाई द्वारा दिखाया गया रूसी आरएटीओ काफी प्रभावशाली था। 220 किलोग्राम की यह इकाई 3000 केजीएफ का दबाव पैदा कर सकती थी और इसका कुल आवेग 24,500 किलोग्राम प्रति सेकेंड था। हमारा काम रॉकेट के भारतीय संस्करण को भारतीय लड़ाकू बमवर्षक एचएफ-24 मारुत में फिट करना था। इस युद्धक विमान को एमआईटी के पूर्व प्रोफेसर कुर्त टैंक ने डिजाइन किया था। इस परियोजना का नेतृत्व् करने के लिए मैं और नारायणन बेढब जोड़ीदार लग रहे थे। वह पूर्ण रूप से तैयार किया गया सशक्त सैन्य अधिकारी था जो संगठित और अधीर था। मैं वैज्ञानिक और इंजीनियर था जो तुलनात्मक रूप से तौर-तरीकों और पहनावे में अस्थिर था। एक चुनी हुई टीम के साथ हमें केवल 18 महीनों में अपना लक्ष्य पूरा करना था।

इस समय तक हमें पता चल गया था कि अगर तकनीकी लोगों के लिए प्रासंगिक है तभी यह उपयोगी है। इसे लोगों के लिए जरूर अर्थपूर्ण होना चाहिए। लोगों को लगना चाहिए कि यह उनके फायदे के लिए है। मैंने यह भी समझ लिया था कि प्रयोगशाला में विकसित होने वाली भविष्य की होनहार तकनीक के पूर्व चरण को परिपक्व करना जरूरी है। इसका अर्थ है इस तकनीकी का अतिरिक्त विकास, परीक्षण उसकी नकल करना और तभी किसी तकनीक का उपयोग वांछित रूप में किया जा सकता है। इस परियोजना को भी इन विभिन्न् चरणों से गुजरना था। फिलामेंट और फाइबर ग्लास तथा एपॉक्सी का प्रयोग करते हुए आरएटीओ के साथ मैंने मोटर के लिए एक समग्र संरचना का विकल्प रखा। मैंने कंपोजिट प्रोपेलेंट का भी प्रयोग किया जिसका दहन घटना और वास्ताविक समय में भार कम होने की प्रणाली पर आधारित था। ये तकनीक बहुत ही नयी थीं और इनको और विकसित करने की जरूरत थी।

आरएटीओ के मोटर का पहला स्थिर परीक्षण फरवरी 1969 में किया गया। इसके बाद अगले चार महीनों में ऐसे चौंसठ परीक्षण और किए गये। यह सब इस परियोजना पर काम करने वाली केवल बीस इंजीनियरों की टीम ने किया। आरएटीओ परियोजना सफल रही। यह सफलता रक्षा संस्थानों तथा निजी क्षेत्रों के संगठनों के बीच भागीदारी से प्राप्त् हुई। मैंने गहन तकनीक परियोजना के प्रबंधन का रहस्य भी आरएटीओ परियोजना के माध्याम से सीखा। तकनीक और मानव कौशल संयुक्त रूप से पूरी तरह आशाजनक है लेकिन इसे साकार करना बहुत कठिन काम है। बहुत हद तक इस तरह के कामों में तकनीक के गलत तरह से प्रयोग करने पर अक्सर असफलता हाथ लगती है। जानकारी की कमी और अपूर्ण कौशल इस तरह के गलत प्रयोग के कारण होते हैं।

सफलता के लिए उचित जानकारी और कौशल बहुत जरूरी है। जानकारी सीखने से आती है और कौशल काम करने से। इसके लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है। और यह सभी क्षेत्रों के पेशों पर लागू होता है।

> "अगर आपका काम दूसरों को और अधिक सपने देखने, और अधिक सीखने, और अधिक काम करने के लिए अभिप्रेरित करता है तो आप सचमुच में नेता हैं।"

एक अन्य कारण जिससे मुझे और ग्रुप कैप्टन नारायणन को इस परियजना में सफलता मिली वह थी डॉ. साराभाई का दृष्टिकोण। उन्होंने हमारी परियोजना को न सिर्फ पूरे दिल से समर्थन किया था बल्कि इससे भी अधिक यह कि उन्होंने मुझमें विश्वास जताया था और जब भी हमने दक्षतापूर्वक काम करने के लिए पूरी स्वतंत्रता की माँग की, हमें दी गई। उन्होंने समय बचाने के लिए हमारी रेलगाड़ी की जगह हवाई जहाज से यात्रा करने की अनुमति प्रदान की जो उस समय के लिए बहुत ही अप्रत्याशित था। उन्होंने हमें जरूरत पड़ने पर निजी कंपनियों से सहयोग लेने की भी अनुमति दी। मैंने जाना कि विश्वास सभी उत्पादक कार्य का आधार है।

मैं आरएटीओ परियोजना से और भी निष्कर्ष पर पहुँचा। मैंने 'जन्मजात नेताओं' के बारे में सुना था जो हमारे बीच कम सशक्त को हतोत्साहित कर नेतृत्व की भूमिका निभाता है। मैंने इस बारे में कुछ नया ही जाना जो समय के साथ ही जाना जा सकता है और विकसित होता है। नेतृत्व में विशेष मानसिक और अंतरव्यक्तिक कौशल होना चाहिए जो सभी के लिए सुलभ हो, न कि सिर्फ कुछ चुने हुए लोगों के लिए। इन गुणों में पारंगत होने के लिए लोगों को अपने आचरण में सावधानीपूर्वक ध्यान देने, मूल्यांकन करने तथा अभ्यास करने की जरूरत होती है।

नेतृत्व सीखना खासतौर पर आंतरिक प्रक्रिया तो है ही, यह अन्य लोगों के व्यवहार से सीखने की प्रक्रिया भी है। आंतरिक उन्मुख क्षमता पर काम किए बगैर बाहरी उन्मुखि क्षमता बेकार है। आंतरिक निर्माण में स्वमजागरूकता, कठिन प्रश्न करना, उद्देश्य के साथ संवाद करना और साहसिक मानसिकता विकसित करना शामिल है।

डॉ. साराभाई अपने आप में एक बहुत ही बुद्धिमान नेता थे। वह समझते थे कि नेता बनने के लिए अपने आस-पास की स्थितियों का लाभ कैसे उठाया जाए। वह हमलोगों से पूछा करते थे, "आप सफलता की सीढ़ी बिना अवसर के पायदान चढ़े कैसे चढ़ सकते हैं?"

आरएटीओ परियोजना की सफलता के बाद एक नये नेतृत्व की चुनौती मेरे सामने आनेवाली थी। डॉ. साराभाई ने देश के लिए दस साल की अंतरिक्ष योजना बनाई। इस दस्तावेज से यह स्पष्ट था कि इसरो (ISRO) का दीर्घकालीन लक्ष्य देश के विकास के लिए होगा। इस दस्तावेज में कहा गया था कि इसरो को दूरसंचार, दूरसंवेदी और ऋतु विज्ञान पर संसाधन सर्वेक्षण के लिए ध्यान देकर देश की मदद करनी है। इसके लिए हमें जियोसिंक्रोनस (Geosynchronous) सहित भारतीय उप्रग्रह की रूपरेखा गढ़ने तथा इसे भारतीय प्रक्षेपण वाहन (लॉन्चे व्हेभकिल) के जरिये लॉन्च करने

की जरूरत है। भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (सेटेलाइट लॉन्चे व्हेकिल, एसएलवी) परियोजना का, डॉ. साराभाई ने मुझे 'परियोजना निदेशक' बनाया।

एसएलवी चार–स्तरीय (four&stage) ठोस प्रणोदक मोटर वाला रॉकेट था। यह पहला स्वदेशी रॉकेट था जो उप्रग्रह को पृथ्वी के न्यून कक्ष में स्थापित करता। इसका मतलब था कि 160 किलोमीटर यानी 100 मील और 2000 किलोमीटर यानी 1200 मील की ऊँचाई के बीच। वहाँ कक्ष में उपग्रह की कक्षीय अवधि करीब 88 से 127 मिनट के बीच थी। 160 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित चीजें बहुत तेजी के साथ नष्ट होती हैं और पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण ऊँचाई भी घटती जाती है। हमलोगों का लक्ष्य 40 किलोग्राम भार का एक उपग्रह 400 किलोमीटर की ऊँचाई वाले कक्ष में भेजने का था।

इसरो का शुरुआती दौर में पोषण करने वाले सक्रिय अंतरराष्ट्रीय सहयोग को अब इसे आत्मदनिर्भर बनने का, स्वदेशी तकनीक विकास करने का, रास्ता दिखाना था। इसरो को अब अपोजी एवं बूस्टेर मोटर, मोमंटम व्हीयल और सौर पैनल के विकास–संबंधी वायुयान सब–सिस्टम की प्रणाली पर काम करना था। यह योजना जायरोस्कोप्सी, टेलीमीटरी, ट्रांसड्यूसर, विशेष सामग्री एडहेसिव और पॉलीमर्स जैसी तकनीक में भारी परिवर्तनकारी सिद्ध होगी। इनका विकास पहले इसरो द्वारा किया जाए और बाद में इसका प्रयोग देश–निर्माण क्षेत्र की मजबूती के लिए औद्योगिक उपयोग के रूप में किया जाए।

हमें अभी–भी विदेशों में मौजूद सफल तकनीक पर ध्यान देना था। हमारे एसएलवी की शुरुआत स्काउट (ठोस नियंत्रित कक्षीय उपयोगिता परीक्षण प्रणाली के पर्याय) से होनी थी। स्काउट की डिजाइनिंग अमेरिका में लैंजली अनुसंधान केन्द्र में हुई थी जहाँ मैंने अपने साथियों के साथ प्रशिक्षण लिया था। यह बहुत पहले की बात है जब पहली बार सभी ठोस प्रणोदक वाला कक्षीय लॉन्च व्हेयकिल को डिजाइन किया गया था। मानक सेटेलाइट लॉन्च् व्हेकिल की लंबाई करीब 23 मीटर (75 फीट) और इसका वजन 21,500 किलोग्राम (47,398 पौंड) था। यह बहुत ही लंबा समय था जब हमने आरएच–75 से अपना स्वदेशी अंतरिक्ष अभियान शुरू किया था।

सन् 1971 तक लॉन्चर का डिजाइन चरण पूरा कर लिया गया था। टीम ने छः डिजाइन तैयार किए थे। डॉ. साराभाई ने इनमें से मेरे डिजाइन को चुना। और इस तरह इस परियोजना का नाम रखा गया– 'एसएलवी–3'।

एसएलवी–3 परियोजना के शुरू होने के कुछ ही दिन बाद भारतीय वैज्ञानिक समुदाय को बहुत जोर का झटका लगा। 30 दिसंबर 1971 को डॉ. विक्रम साराभाई का निधन हो गया। उस समय उनकी उम्र केवल 52 साल थी।

मैं उनके अचानक देहावसान से हिल गया था और उनकी क्षति बहुत निकट से महसूस कर रहा था। हृदयाघात से हुई उनकी मृत्यु से तुरंत पहले मैंने दिल्ली हवाई अड्डे से त्रिवेंद्रम आने के लिए हवाई जहाज में चढ़ने से पहले उनसे बात की थी। उन्होंने कहा था कि जब मैं त्रिवेंद्रम हवाई अड्डे पर उतरूँ, तो उनसे मिलूँ लेकिन मुझे वहाँ उनसे मिलने की बजाय उनकी मृत्यु की खबर का सामना करना पड़ा। एक बार के लिए, मैंने भारी क्षति महसूस की। मेरा गुरु और सृजक हमेशा के लिए मुझे छोड़ गया था।

आने वाले वर्षों में मेरे माता–पिता भी मेरे साथ नहीं रहे। इस तरह के अनुभव, राष्ट्रीय दुख जैसी घटनाओं और सगे–संबंधियों की जब अनावश्यक मृत्यु हुई, तो इसने मुझे मृत्यु पर गहराई से सोचने पर विवश किया। मुझे लगा कि हालाँकि मृत्यु आदमी के जीवन की शाश्वैत घटना है फिर भी कोई मरना नहीं चाहता। यहाँ तक कि जो लोग स्वार्ग की इच्छा रखते हैं, वे भी वहाँ जाने के लिए मरना नहीं चाहते। मुत्यु एक ऐसी मंजिल है जिसे हम सभी को पाना ही है। कोई भी इससे बचा नहीं है। और यह वैसा ही है जैसा इसे होना चाहिए, क्योंकि मृत्यु बहुत कुछ जीवन के एक सबसे अच्छे आविष्कार की तरह है। यह जीवन को बदलने वाला कारक है। यह पुराने की सफाई कर नये को आने का रास्ता प्रशस्तक करती है।

किसी भी हाल में डॉ. विक्रम साराभाई के एसएलवी–3 की परियोजना का मार्गदर्शन उनके निधन के बाद किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा किया जाना था। डॉ. सतीश धवन ने इसरो के स्थायी प्रध ाान का स्थान लिया और डॉ. ब्रह्मप्रकाश हमारे निदेशक बने। टीईआरएलएस–TERLS का नाम डॉ. विक्रम साराभाई के सम्मान में विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र रखा गया। डॉ. साराभाई अपने अंतरिक्ष उड़ान अभियान को साकार होते देखने के लिए हमारे बीच नहीं थे लेकिन हम बहुत ही विश्वास के साथ उनके दृष्टिकोण का पालन कर रहे थे।

जहाँ से हमने शुरुआत की थी वहाँ से एसएलवी–3 हमारे लिए एक लंबी छलांग की तरह थी। सीमित साधनों से रोहिणी साउंडिंग रॉकेट बनाना भी कोई आसान काम नहीं था। यहाँ तक कि अच्छे बजट और कई वैज्ञानिकों के इनपुट के बावजूद क्रियाशील उपग्रह बनाना और उसका डिजाइन करना बहुत ही भारी–भरकम काम है।

जो भी हो लेकिन एसएलवी–3 की परियोजना पर काम करता हुआ मैं काफी सुविधा महसूस कर रहा था। मैं कभी भी विचार–विमर्श, तर्क करने, व्याख्या तथा किसी मसले पर बात करने में, लोगों से मिलने में थकान महसूस नहीं करता था। यह मेरा जुनून था। मेरे पास बेकार की बातों और छोटे कामों के लिए समय नहीं था। जब भी मेरे पास खाली वक्त होता था मैं या तो किताबें पढ़ता था या फिर कर्नाटक संगीत सुनता था। मुझे पूरा विश्वास था कि कारणों और नैतिक गुणों के साथ ताल–मेल बिठाकर आत्मा की आवाज सुनकर उसके अनुसार रहना ब्रह्मांड का दिव्य आदेश है। मैं उद्देश्य पूर्ण जीवन के महत्व को भी महसूस करता था। मैं इंद्रिय–आनंद की दासता और खुशियों के पीछे छिपे दुर्गति से अपने को मुक्त महसूस करता था। इस समय मैं अपने 40 की उम्र में ब्रह्मचर्य जीवन–शैली में काफी हद तक ढल चुका था, जो किसी भी रूप में किसी साधु के जीवन से कम नहीं था।

मुझे धैर्य की जरूरत थी जो अधेड़ उम्र और शांत दिमाग के साथ आता है। आरएटीओ परियोजना और इसमें अंतर था। आरएटीओ का विकास तत्कालीन जरूरत के अनुसार कुछ ही पहलुओं का विकास था। एसएलवी–3 एक साथ कई विकासशील रास्तों पर चल रहा था। इसका सही–सही विवरण अंधी गली के रूप में किया जा सकता है। हमलोगों ने फ्रांसीसी अंतरिक्ष कार्यक्रम के साथ भागीदारी की। इस भागीदारी के तहत एसएलवी–3 और फ्रांसीसी लॉन्चक व्हेकिल डायमंट बीसी चौथे चरण को साझा करना था। हमारी टीम दो सालों तक एसएलवी–3 को डायमंट के

चौथे चरण के अनुसार बनाने के लिए डिजाइन करती रही। लेकिन फ्रांस ने अपने राष्ट्रीय लॉन्च कार्यक्रम को 1975 में यूरोपीय एरियन लॉन्चूर के लिए छोड़ दिया। इससे मैं बहुत ही अधिक परेशान हो गया। जिसे मैं दो साल की बर्बादी समझता था उसे मेरे परियोजना निदेशक ब्रह्मप्रकाश ने मुझे इसे दूसरी तरह से समझने में मेरी मदद की। उन्होने मुझे बताया कि अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष सहयोग में लेना–देना कई रूपों में होता है। यह लंबे समय तक चलने वाला है। कभी–कभी तो यह पीढ़ियों तक चल सकता है। अंतरराष्ट्रीय तकनीकी विनिमय एक इंद्रजाल की तरह है। यह तकनीकी जानकारी का रहस्योमयी जाल है जो बहुत ही जटिलता से संस्थानों में बुना गया है। कोई भी अच्छा किया गया काम बर्बाद नहीं होता। इसका पता कहीं दूसरी जगह चलता है और वहाँ उसका प्रयोग होता है।

इन वर्षों के दौरान मैं और ब्रह्मप्रकाश काफी करीब आ गये थे। हमलोग शाम को साथ में टहलने जाते थे और यद्यपि वे बहुत अधिक धूम्रपान करते थे लेकिन हमारी बातचीत के दौरान वे कभी–भी सिगरेट नहीं जलाते थे। उनसे मुझे मेरे पिता की याद आ जाती थी कि कैसे वे अपनी बुद्धिमत्ता को अभिव्यसक्तम करते थे। एक बार उन्होंरने मुझसे कहा था–

'नम्रता या नम्र व्यहवहार किसी के सामने अपने को गिराना नहीं है। विनम्रता किसी के पद (स्थान) के संदर्भ में स्पीष्ट दृष्टिकोण और आदर दिखाना है।'

डॉ. ब्रह्मप्रकाश का सौहार्दपूर्ण नेतृत्व और बुद्धिमत्ता ने एसएलवी–3 परियोजना की संभावना को बरकरार रखा। शायद इसी कारण हम अपने पहले उपग्रह का प्रक्षेपण एसएलवी–3 से करने की बजाय 19 अप्रैल, 1975 को रूसी रॉकेट से करने की निराशा को बर्दाश्त कर सके। भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' रूस के कापुस्तीशन यार के अस्त्राखान ओब्लास्ट से प्रक्षेपित किया था।

आर्यभट्ट का नाम पांचवीं शताब्दी के प्रसिद्ध भारतीय खगोलशास्त्री और गणितज्ञ आर्यभट्ट के नाम पर रखा गया था। यह बहुत ही प्रभावशाली उपग्रह था। 26 साइड वाले इस उपग्रह का प्रत्येक साइड 1.4 मीटर के व्यास के पॉलीहेड्रॉन से बना था। ऊपर और नीचे वाले भाग को छोड़कर इसके सारे फलक सौर सेल से आच्छादित थे। इसे 600 किलोमीटर की ऊँचाई पर वृत्तीय कक्ष के नजदीक प्रक्षेपित करने के लिए कॉसमोस–3एम व्हेकिल का प्रयोग किया गया था।

आर्यभट्ट का प्रक्षेपण सफल रहा। भारतीय सरकार और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से भारत अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर गया। इसके लिए डॉ. साराभाई के काम का इसरो ने खूब श्रेय लिया। डॉ. साराभाई देशभक्त और स्वीप्नदर्शी व्यक्ति थे। इस क्षेत्र में उनकी बुद्धिमत्ता और तकनीक के प्रयोग की क्रांतिकारी इच्छाओं ने देश और यहाँ के लोगों को समान रूप से लाभ पहुँचाया।

डॉ. साराभाई मूलरूप से राजनयिक थे जिन्हें अंतरराष्ट्रीय सहयोग को अभिप्रेरित करने, उनके बीच पहुँच बनाने का दैवीय उपहार प्राप्त था। आर्यभट्ट की बुनियाद रखने के लिए उन्होंने अमेरिकी अंतरिक्ष संगठन नासा (NASA) का सहयोग सुनिश्चित किया जबकि इसे प्रक्षेपित करने के लिए रूसी कॉसमोड्रोम का प्रयोग किया। यह उस वक्त की बात है जब रूस और अमेरिका के बीच शीतयुद्ध जारी था। यह भी कहा जा सकता है कि अंतरिक्ष कार्यक्रम ने विश्व की शक्तियों के बीच की शांति बरकरार रखने में कुछ हद तक अपनी भूमिका निभाई।

"सफलता कठोर परिश्रम, पूर्णता और अफलता से सीखने का परिणाम है।"

आर्यभट्ट के बाद भास्कर–I का प्रक्षेपण किया गया। इस उपग्रह का नाम सातवीं शताब्दी के महान गणितज्ञ के नाम पर रखा गया। भास्कर–I का प्रक्षेपण 7 जून, 1979 को फिर कापुस्तीन यार से ही किया गया। इसरो द्वारा बनाए गये इस 444 किलोग्राम के उपग्रह में दो टेलीविजन कैमरे लगाए गये। इनमें से एक इन्फ्रा–रेड कैमरा था। उपग्रह का काम जलविज्ञान, वानिकी और भूविज्ञान से संबंधित आँकड़े संग्रह करना था। सन् 1977–79 के दौरान उपग्रह आधारित डाक एवं तार सेवा की स्थापना के लिए उपग्रह दूरसंचार प्रयोग परियोजना (एसटीईपी) के लिए इसरो ने फ्रांको–जर्मन सिंफोनी सेटैलाइट का प्रयोग किया था।

रूस से भास्कर–I के सफल प्रक्षेपण के दो महीने बाद 10 अगस्त 1979 को एसएलवी–3 का पहला प्रायोगिक परीक्षण उड़ान किया गया। इस मिशन का प्राथमिक उद्देश्य एसएलवी में लगे स्टेज मोटर, मार्गदर्शन, नियंत्रण सिस्टम और इलेक्ट्रॉनिक्स् सब–सिस्टम का सीधे मूल्यांकन करना था। इस परीक्षण के साथ ही हम ग्राउंड सिस्टम जैसेकि– चेक आउट, ट्रैकिंग, टेलेमीटरी और दक्षिणी आंध्र प्रदेश के श्रीहरिकोटा में हाई एल्टिट्यूड रेंज में लॉन्च ऑपरेशन में बने रियल टाइम डाटा सुविधा जैसे सिस्टम का भी मूल्यांकन कर सके।

रॉकेट ने 0758 बजे अपनी उड़ान भरी। प्रथम चरण का काम एकदम सही रहा लेकिन दूसरा चरण नियंत्रण से बाहर चला गया। उड़ान 317 सेंकड के बाद खत्म हो गई और रॉकेट आंध्र प्रदेश के समुद्री तट से 540 किलोमीटर दूर समुद्र में ध्वस्त हो गया। इस असफलता का कारण ईंधन का रिसाव था लेकिन हम इसके बारे में बाद में ही जान पाए।

यह कहा गया कि इस दुर्घटना से मेरे भीतर गहन निराशा घर कर गई, मेरी निराशा को कम करके आंकना होगा। यह मेरे जीवन का सबसे पीड़ादायक अनुभव था। परियोजना निदेशक के रूप में मैं इस परीक्षण की सफलता और असफलता के लिए जिम्मेदार था। इस परीक्षण के खत्म होते ही किसी ने मुझसे पूछा 'आप की नजर में क्या गलत हुआ होगा?' मैं बिना कुछ बोले ही आगे बढ़ गया था। मैं रात–भर चलने वाले काउंटडाउन में संलग्न था और पूरे सप्ताह ठीक से सो भी नहीं पाया था। तनाव से मेरे पैर अकड़ गए थे। मैं इतना थक गया था कि कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। मैं बस अपने कमरे में जाकर धम्म से बिस्तर पर गिरा और सो गया।

कुछ ही घंटों के बाद जब मैं जगा तो मैंने देखा कि डॉ. ब्रह्मप्रकाश मेरे कमरे के बाहर मेरा इंतजार कर रहे हैं। वे मुझे भोजन के लिए कैंटीन ले गये और वहाँ हमलोगों ने बातचीत की। हम दोनों के बीच इस परीक्षण के ध्वस्त होने के बारे में एक भी शब्द कुछ नहीं कहा गया। शाम को उन्होंने मुझे एक प्रेस वार्ता में ले गये। इस प्रेस वार्ता के दौरान इसरो के बड़े अधिकारी और राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रेस के लोग मौजूद थे। मुझे लगा कि प्रेस अब मेरी चीर–फाड़ करेगा।

स्थिति को सँभालने की जिम्मेदारी प्रो. सतीश धवन ने ली। सबसे पहले उन्होंने वहाँ उपस्थित लोगों को, एसएलवी–3 टीम के सदस्यों को बुस्टर मोटर के पहले चरण के बाधारहित सफल प्रक्षेपण

के लिए बधाई देकर सबको हैरान कर दिया। उन्होंने मेरा नाम लेकर कहा कि उन्होंने अनुकरणीय नेतृत्व का परिचय दिया है। प्रो. धवन ने कहा कि "मैंने सात सालों तक हजारों लोगों के साथ बहुत ही वृहद प्रयास किए हैं, और कभी-भी व्यक्तिगत पसंद या नापसंद को अपने कर्तव्य के बीच में नहीं आने दिया।" मैं एकदम दंग था।

जब एक संवाददाता ने उनसे पूछा, 'करदाताओं के 25 करोड़ रुपये बंगाल की खाड़ी में डूबो दिए गये' तो प्रो. धवन ने बहुत ही शांति से इसका जवाब दिया- "भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम में जो भी प्रयास किए जा रहे हैं उनके परिणाम दूरगामी हैं। आप उस राशि का हिसाब नहीं लगा पाएँगे जो भविष्य में भारत का अपना दूरसंचार और दूरसंवेदी उपग्रह न होने पर देश से बाहर जाएगी। कृपया इस बात को समझने की कोशिश कीजिए कि सरकारी संगठन के कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों द्वारा अरबों डॉलर का काम किया गया है। वहाँ पूरी तरह शांति छा गई थी। इसके बाद प्रो. धवन ने कहा कि मुझे विश्वांस है कि ठीक एक साल बाद एसएलवी-3 हमारे उपग्रह को कक्ष में स्थापित करने में सफल होगा।

बाद में मैंने अपना इस्तीफा देने का प्रस्ताव रखा लेकिन प्रो. धवन ने मेरी एक न सुनी। उन्होंने मुझसे कहा, "कलाम आपके काम के परिणाम दूरगामी हैं। यही आपका मुकद्दर है। इससे भागिए मत।"

इसके बाद 18 जुलाई, 1980 को एसएलवी-3 का प्रक्षेपण सफलतापूर्वक किया गया। इसने रोहिणी उपग्रह आरएस-1 को सफलतापूर्वक कक्ष में स्थापपित कर दिया। इस तरह भारत सफल अंतरिक्ष अभियान के विशेष छः देशों के क्लब में शामिल हो गया। एसएलवी-3 की सफलता ने अग्रणी लॉन्चि व्हेकिल परियोजनाओं जैसे- अगमेंटेड सेटेलाइट लॉन्ची व्हेकिल (एएसएलवी) पोलर सेटेलाइट लॉन्चर व्हेजकिल (पीएसएलवी) और जियोसाइंक्रोन्स सेटेलाइट लॉन्ची व्हेकिल का रास्ता प्रशस्त कर दिया।

26 जनवरी, 1981 को गणतंत्र दिवस के अवसर पर मुझे देश के तीसरे सबसे बड़े सम्मान 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

मद्रास (चेन्नै) के अन्ना विश्वविद्यालय ने मुझे 'डॉक्टेर ऑफ साइंस' की मानद उपाधि दी। मैं अपने कोवा से बाहर आ गया था।

६

ईश्वर का साधन

"आपके बड़े होने की प्रक्रिया में मोड़ तब आता है
जब आप अपने भीतर की उस आंतरिक शक्ति को
खोज लेते हैं जो आपको सभी घावों के बाबवजूद
जीवित बचा लेती है।"

जब मुझे पद्मभूषण सम्मान मिला तो इसरो में मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। कुछ लोग मेरी खुशी में शरीक हुए और अन्य लोगों का कहना था कि मुझे व्यक्तिगत रूप से ये सम्मान और मान्यता देने की जरूरत नहीं थी। इसके बाद मेरे कुछ बहुत ही करीबी सहयोगी मुझसे ईर्ष्या करने लगे। मेरे अंदर की शक्ति ने कहा कि फिर से कुछ नया करने का वक्त आ गया है। मैंने जो दुआ माँगी थी, मानो वह कुबूल हो गई। मुझे जल्दी ही डॉ. राजा रमण से मिलने का मौका मिल गया। डॉ. रमण और होमी जहाँगीर भाभा भारतीय परमाणु कार्यक्रम के निर्माता थे। उस समय डॉ. रमण, रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार थे।

डॉ. रमण ने इसरो से आसानी से मुझे बाहर निकालने के लिए रक्षा अनुसंधान विकास संगठन (डीआरडीओ) में शामिल होने का निमंत्रण दिया। मैं 1 जून, 1982 को डीआरडीओ के मिसाइल केन्द्र, हैदराबाद में रक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला (डीआरडीएल) में निदेशक के रूप में शामिल हो गया।

मेरी तरक्की हुई थी। लेकिन हमारे लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था। नया पद भार सँभालना मेरे लिए बदले हुए परिदृश्य में नई चुनौतियों का सामना करना था। यह समय-समय पर सबकी जरूरत होती है। तब मुझे महसूस हुआ कि जो लोग महत्व को अपने से चिपकाए रखते हैं, वास्तव में वे महत्वहपूर्ण नहीं होते। मुझे अपने कॅरियर के बारे में भी ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं थी क्योंकि मुझे इसे खोजने की बजाय, इसकी खोज मेरे लिए महत्वपूर्ण थी। प्राधिकारी आपके आचरण और आपके प्रदर्शन के अनुसार आपको सम्मान प्रदान करेंगे। उस तरह नहीं जैसा कि

आप अपने कॅरियर पथ के बारे में महसूस करते हैं। और आपको यह कत्तई पता नहीं रहता कि आपका कॅरियर आपको कहाँ ले जाएगा। खुदा वह सबकुछ जानता है जो आदमी नहीं जानता।

डीआरडीएल में मुझे लाने का सरकार का मकसद एक इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (आईजीएमडीपी) का विकास करने का प्रयास करना था। कुछ समय से मिसाइल विकास का काम रेखांकन बोर्ड और स्थिर परीक्षण बोर्ड तक आकर रुक गया था। सैन्य साजो-सामान के मामले में मेरा देश क्षेत्रीय एवं अन्य विश्व शक्तियों के मामले में काफी पिछड़-सा गया था। अब समय आ गया था कि हम अपने देश की सुरक्षा व्यावस्था की ओर गंभीरता से ध्यान दें। इस कार्यक्रम के लिए रक्षा मंत्री आर.वेंकट रमण ने एक बहुत ही अप्रत्याशित 388 करोड रुपये की धनराशि बजट में मंजूर करा ली थी।

इस कार्यक्रम में पाँच परियोजनाओं को शामिल किया गया और भारतीय मिसाइल तकनीक के लिए इन सबका नाम इनके मिजाज के अनुसार भारतीय रखा गया। धरती की सतह-से-सतह पर मार करने वाली मिसाइल का नाम रखा गया 'पृथ्वी'। कम दूरी के वायु रक्षा हेतु सामरिक कोर वाहन का नाम रखा गया 'त्रिशूल'। मध्यम दूरी तक धरती से हवा में मार करने वाली वायु रक्षक मिसाइल का नाम रखा गया 'आकाश'। टैंक नाशक मिसाइल परियोजना का नाम रखा गया 'नाग'। मैंने अपने ड्रीम प्रोजेक्ट 'इंटरमीडिएट-रेंज बैलिस्टिक मिसाइल (मिसाइल जिसकी मार करने की क्षमता कम-से-कम 1000 से 3000 किलोमीटर हो)' का नाम 'अग्नि' रखा। इसमें अंतरिक्ष से पेलोड वायुमंडल में आग के गोले की तरह पुनः प्रवेश करता है।

> "गर्व का संबंध हमारे अपने विचार से है और घमंड या दिखावा का संबंध है, हमारे बारे में दूसरे क्या सोचते हैं।"

भारत में आईजीएमडीपी के बारे में आम उत्साह के बावजूद इस कार्यक्रम के रास्ते में बाहरी देशों द्वारा कई तरह की बाधाएँ पैदा की जा रही थीं। ऐसा लग रहा था कि 'परमाणु ऊर्जा संपन्न राष्ट्र' ऐसा महसूस करते हैं कि केवल उन्हीं के पास मिसाइल तकनीक हो।

कैरी इंक से एक सुपर कंप्यूटर खरीदने के लिए अधिकारी वर्ग की टीम के साथ मैं भी 1985 में अमेरिका, सिएटल गया था। जाहिरी तौर पर हमें यह कंप्यूटर मौसम की जानकारी के लिए चाहिए था। मुझे इसकी जरूरत अग्नि के पेलोड के वायुमंडल में पुनः प्रवेश के कंप्यूटेशनल फ्लूकड डायनामिक्स विश्लेषण के लिए चाहिए था। भारत के पास कोई हाइपरसोनिक विंड टनल नहीं था और पेलोड के पुनः प्रवेश स्टेंज के डिजाइनिंग और मॉडल तथा परीक्षण के लिए शक्तिशाली कंप्यूटर की जरूरत थी। केवल अमेरिका और जापान के पास सुपरकंप्यूटिंग की तकनीक थी। अमेरिका हमारे प्रतिनिधिमंडल को साफ-साफ मना कर दिया कि वह भारत को उक्त मशीन नहीं बेचेगा।

इसके बाद एक बार फिर भारतीय वैज्ञानिक स्वदेशी तकनीक विकसित करने को मजबूर हो गए। भारतीय कंप्यूटर विशेषज्ञों ने इस तरह की शक्तिशाली गिगाफ्लॉप्स रेंज में कंप्यूटर बनाने की चुनौती के लिए तैयार हो गए। अन्य दूसरे स्वदेशी कंप्यूटिंग प्रयासों की तरह यह भी नए क्षेत्र में अवसर के लिए बीज बोने जैसा था जिसकी फसल हम नई शताब्दी में काटना जारी रख सकते थे।

डॉ. विजय भटकर के नेतृत्व में पुणे में सुपर कंप्यूटिंग के क्षेत्र में पहल करने के लिए सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ एडवांस कंप्यूटिंग (सी–डीएसी) की स्थापना 1988 में की गई। तीन साल बाद जब सी.डीएसी सुपरकंप्यूटर परम (पीएआरएएम) बनाया तो इसकी खबर वालस्ट्रीट जर्नल में कुछ इस तरह छपी– 'क्रोधित भारत ने कर दिखाया'। भारत के मिसाइल कार्यक्रम को अभी और बाधाओं का सामना करना था। कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका ने मिलकर अप्रैल 1987 में मिसाइल तकनीक नियंत्रण शासन (एमटीसीआर) स्थापित कर लिया। एमटीसीआर का गठन मानवरहित परमाणु हथियारों के वितरण प्रणाली के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से किया गया था। इसके अनुसार वितरण प्रणाली अधिकतम 500 किलोग्राम का पेलोड 300 किलोमीटर की दूर तक ले जा सकता था।

एमटीसीआर कोई संधि नहीं थी बल्कि सदस्य देशों के बीच स्वैच्छिक व्यनवस्था थी जिस में मिसाइल प्रसार को नियंत्रित करने का उनका एक सामान्य साझा हित शामिल था। एमटीसीआर देश सामान्य सूची के नियंत्रित वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने को प्रतिबद्ध थे। वास्तव में इस सूची में वे सारे तकनीक और उपकरण शामिल थे जो मिसाइल विकास, उत्पा्दन और इसके संचालन के लिए जरूरी थे।

> "जब आगे बढ़ना कठिन हो जाता है तो कठिनाई ही चलने लगती है।"

यह शायद ही लगता था कि मिसाइल संपन्न राष्ट्रों को भारत को मिसाइल बनाने से रोकना चाहिए था। वे देश जो एमटीसीआर प्रतिबंध लगा रहे थे, भारत जैसी चुनौतियों का सामना नहीं कर रहे थे। दुनिया के सबसे अस्थिर क्षेत्र में होने के कारण, दुनिया में उभरते नये परिदृश्य में भारत अगर इसे गंभीरता से ले तो शायद ही वह आयातित हथियारों पर निर्भर रहने का जोखिम उठाएगा। हमें एमटीसीआर प्रशासन के इर्द–गिर्द रास्ता निकालना था।

डीआरडीओ ने सम्पूर्ण आवेग को कार्यान्वित करने योग्य क्लस्टर्ड लिक्विड प्रोपेलेंट रॉकेट इंजन विकसित किया। यह इंजन पूरी तरह अलग–अलग पेलोड रेंज दहन का प्रयोग करने में सक्षम था। यह एक चालाकी–भरा इरादा था। इसने प्रतिबंध से बचने में मदद की। पुणे के पास खडकी में आयुध फैक्टरी की मदद से हमने पृथ्वी के लिए प्रोपेलेंट आयात करने की जरूरत ही खत्म कर दी।

इस तरह चयनात्मक प्रतिबंध जिसका इरादा हमारे मिसाइल कार्य्रम को बर्बाद करने का था, इसे कुछ हद तक धीमा जरूर कर सकता था लेकिन इसे रोक नहीं सकता था। अंतरराष्ट्रीय मंचों द्वारा तकनीकी देने से इनकार करने, व्यापार प्रतिबंध लगाने और डराने–धमकाने के दौरान 'पृथ्वी' का सफल उड़ान परीक्षण 25 फरवरी 1988 को श्रीहरिकोटा से किया गया। यह बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी। परीक्षण से भारत की गाउडेड मिसाइल की बुनियादी माड्यूल विकसित करने की क्षमता स्थापित हो गई थी। 'पृथ्वी' का रूपांतरण लंबी दूरी तक मार करने वाली मिसाइल से हवा में मार करने वाली मिसाइल के रूप में हो सकती है और इसे युद्धपोत पर भी तैनात किया जा सकता है। यह अचूक भी थीः पृथ्वी का सीईपी 100 मीटर से भी कम था।

इसके बाद कई सफल परीक्षण किए गये। ओडिशा के चाँदीपुर के ऊपर एकदम ठीक 7.17 मिनट पर अग्नि मिसाइल आग की रथ पर चढ़कर लपक पड़ी। इसने भारत को दुनिया के तकनीकी और सैन्य शक्तियों के विशेष क्लब में पहुँचा दिया। 300 वैज्ञानिकों का दल अपने नियंत्रण कक्ष के कंप्यूटर मॉनीटर पर आकाश में पेंसिल आकार की चाप को देखकर एक-दूसरे की पीठ थपथपा रहे थे। हर्षित वैज्ञानिकों ने मुझे अपने कंधों पर उठा लिया था।

अग्नि की सफलता ने वाशिंगटन से बीजिंग तक सबको बेचैन कर दिया था। केवल पाँच देशों अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस, चीन और इजरायल ने ही इंटरमीडिएट रेंज बैलिस्टिक (आईआरबीएमएस) विकसित की थी। अग्नि की सफल उड़ान भारत की सामरिक क्षमता में बड़ी छलांग थी। वास्तव में आपका काम ही आपका एजेंट (दूत) है।

शत्रु के क्षेत्र में घुसकर सैन्य् ठिकानों को तबाह करने के अलावा अग्नि परमाणु हथियारों के लिए डिलीवरी सिस्ट्म के रूप में भी काम कर सकती है। भारत में परमाणु रिएक्टरों के लिए प्लूटोनियम के उत्पादन और सामरिक ठिकानों पर कई अग्नि मिसाइलों की तैनाती से भारत की परमाणु शक्ति संतुलन में कई गुना की वृद्धि हुई है। लेकिन सामरिक क्षमता से अधिक जो अग्नि ने साबित किया है वो यह है कि 'अलग-अलग विभागों में काम कर रहे वैज्ञानिक एक सामान्य लक्ष्य के लिए सहयोग करने व साथ काम करने में सक्षम हैं'। इसकी कमियाँ ही भारत के रक्षा अनुसंधान और विकास में लंबे समय तक अवरोधक रहीं।

नाग मिसाइल की पहली उड़ान 7 फरवरी 1990 को संपन्न् हुई। इसे दूसरे दिन दुहराया गया। इस मिसाइल में उच्चशक्ति का संयुक्त एयरफ्रेम था जिसके पंखे मोड़े जा सकते थे। इसके साथ ही उच्च प्रतिरोधी खतरों को रोकने वाला इमेजिंग इंफ्रा-रेड (आईआईआर) अन्वेषक एक रियल टाइम प्रोसेसर, संयुक्त सेंसर पैकेज, इलेक्ट्रिक एक्चुएशन सिस्टम और एक डिजिटल ऑटोपायलट इन विशेषताओं में शामिल हैं। एक बार लॉन्च होने के बाद इसे रास्ता दिखाने की जरूरत नहीं होती। यह लॉन्चर को खुद ही लक्ष्य-भेद करने देता है। यह मिसाइल खुद के निर्देश का प्रयोग कर सकता है और यहाँ तक कि तेजी से चलते-फिरते टैंक को भी ध्वस्त कर सकता है।

आकाश मिसाइल का परीक्षण 14 अगस्त, 1990 में किया गया। इसमें प्रयुक्त रैम तकनीक भारत में पहली बार विकसित की गई थी। यह मध्यम दूरी तक मार करने वाली धरती से आकाश (एमआर-एसएएम) में मार करने वाली मिसाइल थी जिसकी मार करने की क्षमता 18 किलोमीटर की ऊँचाई पर 25 किलोमीटर तक थी। आकाश पूरी तरह रडार से संचालित है और इसमें एक डिजिटल प्रॉक्सिमिटी फ्यूज लगा है जो चलते-फिरते लक्ष्यक के पास आने पर हथियार को दाग देता है। इसके लिए सीधे मार करने की जरूरत नहीं है।

> "ईश्वर आपको सफल बनाए', इससे पहले जरूरी है कि खुद को इतना विनम्र साबित करें कि आप बड़े पुरस्कार को सँभाल सकें।"

वर्ष 1992 के जुलाई में मेरी नियुक्ति डीआरडीओ के महानिदेशक और रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में हुई। बहुत ही महत्वनपूर्ण समय में डीआरडीओ का नेतृत्व मेरे हाथों में था। 26 दिसंबर, 1991 बॉक्सिंग दिवस पर सोवियत संघ का औपचारिक रूप से विघटन हो गया। इसके साथ ही सोवियत संघ के साध हमारी संधि भी निरस्त हो गई। आजादी के बाद से पहली बार शायद भारत इतना कमजोर हो गया था। हमें मदद करने वाला कोई महाशक्ति नहीं थी और हम चारों ओर से दुश्मनों से घिरे थे।

आर्थिक रूप से हम कमजोर थे और किसी भी हालत में परमाणु शस्त्र नहीं बना सकते थे क्योंकि इसके बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगने वाले प्रतिबंध को झेल पाने में हम सक्षम नहीं थे। हर एक को पता होना चाहिए कि एक शक्तिशाली राष्ट्र केवल हथियारों के बल पर शक्तिशाली नहीं रह सकता। इसकी आर्थिक व्यवस्था, शासन व्यवस्था मजबूत और इन सबके ऊपर प्रमुख तकनीक और सामग्री के मामले में आत्मिनिर्भर भी होना चाहिए।

किसी भी हाल में हमें अपने मिसाइलों को देश की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, इनकी तैनाती के लिए तैयार रखना था। दिल्ली रवाना होने से पहले मैंने पृथ्वी, और अग्नि मिसाइलों की सीमित श्रृंखला का उत्पादन शुरू कर दिया। इन्हें विकसित करना और इनका सफलतापूर्वक परीक्षण करना कोई आसान काम नहीं था। इनके उत्पादन का मामला एकदम अलग था। आयुध फैक्टरियों के लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी। भारतीय रक्षा उद्योग रक्षा साजो–सामान बनाने में सक्षम था। लेकिन उसके लिए विदेशी डिजाइन के लिए उत्पादन लाइसेंस लेने की शर्त रखी थी। हमारे पास सावधानीपूर्वक तैयार किए गये ड्राइंग और गुणवत्ता नियंत्रण मौजूद थे। आयुध फैक्टरी के पास इन शस्त्रों को विकसित करने वाली एजेंसियों से अच्छी तरह तैयार जरूरी बुनियादी ड्राइंग नहीं थे। यह ज्यादातर कल्पना पर छोड़ दिया गया था जो फैक्टरी के संगठन के लिए खतरनाक साबित हो सकता था। आईजीएमडीपी के लिए मानकीकरण, प्रक्रिया अनुकूलन, गुणवत्ता का आश्वा. सन और विश्वसनीयता जैसे कठोर अनुशासन की जरूरत होती है। इन सबके बावजूद कहीं–न–कहीं से हमें रक्षा–शस्त्रों के उत्पादन की शुरुआत तो करनी ही थी। रक्षा संगठनों को प्रतिभा के सही पोषण और सामग्री समर्थन के साथ जितने संसाधन उपलब्ध थे उसी से यह काम करना था और प्रक्रिया के साथ सीखना था। यानी यह वैसा ही था जैसाकि किसी आदमी को व्यक्तिगत रूप से नयी चुनौतियों का सामना करने के लिए कुछ करने की जरूरत पड़ती है। आप अपनी शक्ति को खोजते हैं जब आपको अपने सर्वश्रेष्ठ संसाधनों को प्रयोग करने पर विवश किया जाता है। मुझे प्रो. श्रीनिवासन की बात याद थी– 'बिना तनाव के प्रगति नहीं।'

किसी देश और व्यक्ति के लिए कामचलाऊ साधन का प्रयोग और समय का लाभ उठाना आज 21वीं शताब्दी में प्रासंगिक है। हम एक बेमिसाल तकनीकी प्रगति वाले युग में रह रहे हैं, अतः हमारे लिए यह जरूरी है कि हम इससे मिलने वाले अवसरों का उपयोग करें। इसका मतलब यह है कि हमें जितना हो सके बड़े पैमाने पर अपने लोगों और देश के फायदे के लिए तकनीक का क्रियान्वयन करना चाहिए। प्रौद्योगिकी, गरीबी दूर करने का खासतौर से एक शक्तिशाली साधन हो सकती है। बुनियादी स्तर पर तकनीक के प्रयोग न करने से सामाजिक पिरामिड को खामियाजा भुगतान पड़ सकता है इनमें बेहतर बीज, कीटाणु पर नियंत्रण और चमड़े की कमाई में बुनियादी

स्तर पर तकनीक के प्रयोग से गरीबी दूर करने में मदद मिलेगी। मुझे ऐसा लगा कि 1990 के दशक में उदारीकरण से आर्थिक सुधार लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकता है। हमारे देश के बहुत लोग किसी दूसरे युग में फंसे हुए हैं जबकि हम नयी शताब्दी में प्रवेश कर गए। मैं लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में विज्ञान की बड़ी तथा व्यावहारिक भूमिका के प्रति और अधिक सतर्क हो गया।

मैंने इतिहास में पढ़ा था कि तकनीकी और दवाइयाँ का तीव्र विकास टकराव के दिना. ` में ही हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध में रडार की क्षमता में विकास हुआ। बाद में मौसम की सही भविष्यवाणी के लिए इसका प्रयोग होने लगा। युद्ध के मैदान में लोगों को बचाने के लिए एंटी-बॉयोटिक (पेंसिलिन, सल्फो निलामाइड), रक्त परिवर्तन और मलेरिया की दवा की भी खोज द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ही हुई। इन सभी नवाचारों का फायदा आज भी लोगों को मिल रहा है।

अपनी बढ़ती रक्षा जरूरतो को देखते हुए डीआरडीओ में हमने अपनी तकनीक क्रांति का पोषण किया। मैंने महसूस किया कि नवीनतम सैन्य तकनीक जो डीआरडीएल, आईजीएमडीपी में प्रयोग कर रहा है, जरूर किसी-न-किसी रूप में खासकर जो लोग सौभाग्यशाली नहीं हैं, उन लोगों के जीवन में सुधार लाएगी।

वर्ष 1992 में मैं हैदराबाद के निजाम आयुर्विज्ञान संस्थाान (एनआईएमएस) के दो डॉक्टरों हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. बी. सोमा राजू और हड्डी शल्यए चिकित्सक डॉ. बी. एन. प्रसाद से मेरा परिचय हुआ। इन लोगों ने मेरा ध्यान रक्षा तकनीक की ओर से हटाकर नागरिकों को मदद करने वाली तकनीक की ओर दिलाया, जिससे कि गरीब लोगों का इलाज सस्ते दर पर हो सके।

दोनों डॉक्टरों को डीआरडीओ के वैज्ञानिकों के साथ दो क्रांतिकारी अंतरूविषय परियोजनाओं से सबद्ध कर दिया गया। डॉ. बीएन प्रसाद ने पोलियो से पीड़ित बच्चों को चलने में मदद करने के लिए एक बहुत ही अभिनव फ्लोर रिएक्शोन ऑर्थोसिस (एक तरह की पैर नलिका) का डिजा. इन तैयार किया। डॉ. प्रसाद ने डीआरडीएल द्वारा विकसित नवीन उन्नत समग्र सामग्री का अपने डिजाइन में प्रयोग किया था। यह परंपरागत सामग्री की तुलना में अधिक मजबूत और हल्की थी। डॉ. बी. सोमा राजू ने क्रांतिकारी सस्ता कारोनरी स्टेंट बनाया। उन्होंने इस स्टेंट को डेल्टा-फेराइट-फ्री ऑस्टेनिटिक स्टील तार की मदद से बनाया था। तार की सतह तार-ड्राइंग से प्रेरित सूक्ष्म चैनल से मुक्त था। इससे इनका प्रयोग बहुत ही नाजुक कामों में होता है।

परिणाम संतोषप्रद थे। कैलिपर्स सस्ते थे और बहुत हल्के थे। इनका वजन कोई 300 ग्राम था जबकि परंपरागत कैलिपर्स का वजन चार किलो तक होता था। हजारों मरीजों को ये कैलिपर्स लगाए गये। हृदय रोगियों के लिए स्टेंट के कारण सर्जरी का पैसा बच गया। ऐसे मरीजों को केवल स्टेंट के लिए बहुत अधिक पैसा खर्च करना पड़ता था सर्जरी की तो बात ही अलग थी। हमारा स्वदेशी स्टेंट आयातित स्टेंट की ही तरह प्रभावी था और इसकी कीमत भी बहुत कम थी। इस स्टेंट के बाजार में आते ही आयातित स्टेंट की कीमत गिर गई। इस स्टेंट का नाम कलाम- राजू स्टेंट रखा गया था। अभी दुनिया में सबसे कम कीमत पर स्ट्रेंट भारतीय मरीजों को ही मिलता है।

इस बायोमेडिकल और रक्षा सहयोग से भारत की क्षमता का साफ पता चलता था। मैं हमेशा से, और फिर अपने पूरे कॅरियर के दौरान भारत के लोगों की प्रतिभा और उनकी सरलता का कायल रहा हूँ। जो कुछ है वह सहयोग करने की चाह, दृढ़संकल्प और योग्य व्यक्तियों का समर्पण है। तकनीकी या वास्तव में सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता के लिए प्रयास हमारे महान प्राचीन भारत को लाभ पहुँचा सकता है।

हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए आत्मनिर्भरता खासतौर से महत्वपूर्ण है। सेना को आत्मनिभ.र बनाना हमेशा हमारा अंतिम लक्ष्य होगा। इसे पूरा करने के लिए हमें प्रगतिशील प्रतिष्ठानों से भी कुछ अधिक, और सरकार द्वारा निवेश करने के उद्देश्य से भागीदारी की जरूरत थी। हमें विश्वविद्यालयों, निजी सेक्टर और डीआरडीओ के बीच सक्रिय भागीदारी की सख्त जरूरत थी।

रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार और डीआरडीओ के महानिदेश के रूप में मैं 1990 के मध्य में देश को रक्षा साजो-सामान के क्षेत्र में पूर्ण आत्म निर्भरता की तैयारी से काफी दूर देखता था। भारतीय औद्योगिक शोध एवं विकास के आधार को उस स्तर तक अभी-भी विकसित किया जाना था। हम इंटरमीडिएट फेज में थे और अगर इसे आत्मनिर्भरता कहा जाए तो यह समझौता करने जैसा था। आत्मनिर्भरता का अर्थ है कि हम तब तक अपनी सेना को सभी रेंज के हथियारों से लैस करें जब तक कि हमारी औद्योगिक क्षमता परिपक्व न हो जाए। चाहे वे उपकरण विदेशों से या फिर घरेलू संसाधनों से ही क्यों न उपलब्ध कराने पड़ें।

> “अंततः कुछ भी पवित्र नहीं, लेकिन आपकी ईमानदारी मायने रखती है।”

इस बीच हमें अपनी सेना की जरूरतों को पूरा करने की क्षमता के प्रति स्पष्ट और यथार्थवादी होना चाहिए। वर्ष 1996 में नौसेना को अपने युद्धपोतों को हवाई हमले और युद्धपोत निरोधक मिसाइलों से रक्षा के लिए तत्काल तीव्र गति से जवाब देने वाली वायु रक्षा प्रणाली की जरूरत महसूस की गई। पाकिस्तान ने अमेरिका से हारपुन मिसाइल और फ्रांस से एक्जोसेट सी-स्किमिंग मिसाइल खरीद लिया था। ये मिसाइलें दिन-रात, किसी भी मौसम में करीब ध्वनि की गति से हमारे युद्धपोतों तक पहुँच सकती थीं और इससे बड़ा नुकसान कर सकती थीं। न सिर्फ युद्धपोत मिसाइल को निरोधक मिसाइल से पहले चलाने की जरूरत होती है बल्कि मिसाइल निरोधक, मिसाइल को लहरों के विक्षोभ से आने वाली मिसाइल को देखना भी होता है।

इस काम के लिए जिस ‘त्रिशूल’ मिसाइल को तैनात किया जाना था उसमें अभी विलंब था। ‘त्रिशूल’ का स्थैतिक परीक्षण किसी स्थिर लॉन्चर से होना बाकी था। अपेक्षाकृत कठिन, द्वितीय और चलते युद्धपोत पर इसकी तैनाती और वहाँ से दागने की बात तो अभी दूर ही थी। नौसेना के पास इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था कि उसे दो युद्धपोतों को बिना मिसाइल के ही मैदान में उतारना पड़ा।

हमने इस बात से इनकार नहीं किया कि हम नौसेना की जरूरतों को पूरा नहीं कर सके क्योंकि इसके लिए मेरे पास कोई बहाना भी नहीं था। मैंने बस इतना कहा– 'सेना की सेवा अवश्य होनी चाहिए।' इसका मतलब हुआ कि नये युद्धपोतों पर मिसाइल प्रणाली की तैनाती के लिए हमें विदेशों की सहायता लेनी चाहिए। नौसेना ने हमारे द्वारा सुझाए कई प्रणालियों का मूल्यांकन किया और अंत में इजरायली बराक मिसाइल पर राजी हो गई। इससे न सिर्फ भारतीय नौ सेना की जरूरत पूरी होती थी बल्कि इस सौदे से डीआरडीओ को 350 मिलियन डॉलर की संयुक्त परियोजना भी मिल गई। दस साल बाद इस परियोजना के तहत बराक विस्तारित रेंज धरती से हवा में 100 किलोमीटर तक मार करने वाली मिसाइल विकसित की जा सकती थी।

इसके अलावा और भी कई बड़ी विदेशी भागीदारी होनी थी। इनमें से कई एक नयी शताब्दी में भी ठीक–ठाक चलती रहीं। सालों तक चलने वाले एयरोस्पेस के क्षेत्र में रूसी वैज्ञानिक प्रतिष्ठान के सहयोग का मैं आनंद उठाता रहा। यह रूसी वैज्ञानिक प्रतिष्ठान की कोई छोटी शाखा नहीं थी। इसने डीआरडीओ और रूस के एनपीओ मासीनोस्ट्रेनिया के बीच संयुक्त उपक्रम स्थापित करने में बड़ी मदद की। इसकी शुरुआत मॉस्को में 12 फरवरी, 1998 को एक समझौते पर हस्ताक्षर के साथ हुई। एनपीओ मासीनोस्ट्रेनिया बहुत ही प्रतिष्ठित संस्थान था जिसने दिग्ग्ज क्रूज मिसाइल और मलाखित तथा ग्रेनिट के साथ आईसीबीएम्ज और स्पेसक्रॉफ्ट को विकसित किया था।

इस संयुक्त उपक्रम ने एक सुपरसोनिक मिसाइल विकसित करने की बात सोची, जो एमटीसीआर नियमों के अनुरूप हो। समझौते के अनुसार इस संयुक्त उपक्रम कंपनी 'ब्रह्मोस एयरोस्पेस लिमिटेड' में भारत का शेयर 50.5 प्रतिशत तय किया गया था। इसका उद्देश्य दुनिया की सबसे तेज गति की मिसाइल डिजाइन करना, इसका विकास करना, निर्माण करना और इसका विपणन करना था। इस समझौते से सभी की जरूरतें पूरी हो रही थीं।

संयुक्त उपक्रम साझा दृष्टिकोण के प्रति विश्वसनीय था और इस कंपनी के नाम से भी यह झलकता था। ब्रह्मोस का नाम 'ब्रह्मपुत्र' और 'मस्कवा' नदियों के नाम पर दोनों देशों के परियोजना में समानता को देखते हुए रखा गया था। ब्रह्ममोस मिसाइल, जिसे बनाने का हमने निर्णय लिया था, हर हाल में युद्ध के नियमों का उसे पालन करना था। जब आक्रमण की गति बढ़ेगी तो निश्चित रूप से दुश्मन को जवाब देने का कम समय मिलेगा। इसलिए ब्रह्ममोस को अपने वर्ग में सबसे तेज गति की मिसाइल होनी चाहिए। इसकी गति 2003 में इराक पर अमेरिकी आक्रमण के दौरान प्रयुक्त टॉम हॉक मिसाइल से भी तेज होनी चाहिए।

ब्रह्ममोस के दो चरण होंगे– पहले चरण में ठोस ईंधन रॉकेट मिसाइल को ध्वनि की बाधा से आगे ले जाएगा (मार्च1), दूसरे चरण में एक द्रव चालित रैमजेट इसे मार्च 2.8 में ठेल देगा। मिसाइल समुद्री लहरों पर दस मीटर की ऊँचाई पर भी दौड़ सकती है। यह विशेषता इसे 'सी स्किमर' बनाता है। ब्रह्ममोस अभी भी सबसे तेज क्रुज मिसाइल है।

मुझे जो काम सबसे पहले डीआरडीएल में करने को दिया गया था, मैंने उसे पूरा कर लिया था। भारत अपनी तकनीक के बल पर विश्व् में मिसाइल शक्ति बन गया था। हमारे सिस्टम हमारे अपने लोगों द्वारा बनाए जा रहे थे जबकि एक समय ये बाहर से मंगाए जाते थे। सबसे

महत्वपूर्ण तो यह कि भारत अपने जटिल क्षेत्र की रक्षा चुनौतियों का सामना करने के लिए नई शताब्दी् में अच्छी तरह तैयार था। अब हमारा देश वैश्विक सैन्य शक्ति का स्थान ले सकता था।

लेकिन अभी–भी मैं यह महसूस करता हूँ कि मैंने अपने जीवन के कार्य को पूरा नहीं किया। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में यह स्पष्ट था कि हमारा देश विश्व की तुलना में बहुत पीछे था। आर्थिक व्यावस्था का मुख्य भाग और जनसंख्या लग रहा था कि दृष्टिकोण के अभाव से पीडित हैं। हम अपने देश की ऐतिहासिक महानता को फिर से 21वीं शताब्दी में कैसे जीवित करेंगे? हम कैसे विशाल युवाशक्ति को जगाएँगे, जो अधिकांशतः बिना इस्तेमाल के हैं?

पूरे मिसाइल कार्यक्रम के दौरान, मैंने महसूस किया कि मैं ईश्वर की परिवर्तन शक्ति के अधीन था। मैंने अब महसूस किया कि जब मेरी जिन्दगी में एक समय लोगों ने सोचा कि 'मैं सेवानिवृत्त होने जा रहा था', तो ईश्वर का मार्गदर्शन मुझे नयी चुनौतियों की ओर ले गया।

७

विकसित भारत का सपना

"जहाँ कोई सपना न हो, वहाँ के लोग
खत्म (विनष्ट) हो जाते हैं।"

टेक्नोलॉजी इन्फॉर्मेशन, फोरकास्टिंग एण्ड एसेसमेंट कौंसिल (टीआईएफएसी यानी सूचना प्रौद्योगिकी, पूर्वानुमान एवं आकलन परिषद) में रहते हुए मैंने 500 विशेषज्ञों की टीम द्वारा किए गये एक विस्तृत अध्ययन का निरीक्षण किया। यह अध्ययन 2020 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने की दृष्टि से किया गया था। अध्ययन के बाद गंभीर विचार-विमर्श और विश्लेषण के फलस्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक संपन्न राष्ट्र वही कहा जाएगा जिसके नागरिकों का जीवन-स्तर बेहतर हो। जहाँ के नागरिक एक विकसित मुल्क के निवासी के तौर पर दुनिया के सामने खड़े हो सकें।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (ग्रॉस नेशनल प्रोडक्ट- जीएनपी), सकल घरेलू उत्पाद (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट- जीडीपी), आर्थिक विकास दर, भुगतानों की बकाया रकम, विदेशी मुद्रा भंडार, प्रति व्यक्ति आय आदि के आँकड़ों से राष्ट्र की संपन्नता का आकलन किया जाता है। आर्थिक स्थिति के सूचक ये आँकड़े राष्ट्र की संपन्नता के प्रतिबिम्ब होते हैं। इसके बावजूद यह ध्यान रखने की बात है कि आर्थिक विकास के इन आँकड़ों को जुटाने में आम जनता की गरीबी और बदहाली को दरकिनार न किया जाए।

भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने की दिशा में हमें विस्तृत सोच-विचार के साथ काम करने की जरूरत थी। हमने इसके लिए एक योजना तैयार की जिसके तहत भारत को 2020 तक एक विकसित राष्ट्र बनाना है। इस योजना को "इंडिया 2020: ए विजन फॉर द न्यू मिलेनियम" पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। यह योजना निराशाजनक आर्थिक मसलों से हटकर इस दिशा में सोचने के लिए थी कि कैसे लोगों का जीवन-स्तर सुधारने के साथ ही राष्ट्र को संपन्न बनाया जा सकता है।

'इंडिया 2020' में राष्ट्र की प्रगति के लिए कुछ क्षेत्रों में ठोस काम करने पर जोर दिया गया है। इसमें कृषि उत्पादन के साथ ही फूड प्रोसेसिंग (खाद्य प्रसंस्करण) को दुगुना करने की जरूरत बताई गयी है। पॉवर इन्फ्रास्ट्रक्चर (विद्युत आधारभूत ढाँचा) को विश्वस्तरीय बनाकर शहरी क्षेत्रों से लेकर सुदूर गाँवों तक विद्युतीकरण और सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने की बात की गई है। यह जरूरत महसूस की गई है कि देश से अशिक्षा का खात्मा हो जाए और लोगों को आसानी से सामाजिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ मिल जाएँ। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ई-गवर्नेंस को बढ़ावा देकर वंचित क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार करने, टेलीकम्युनिकेशन, टेलीमेडिसिन टेक्नोलॉजी, क्रिटिकल टेक्नोलॉजी और स्ट्रेट्जिक इंडस्ट्रीज को बढ़ावा देने जैसे अहम सुझाव 'इंडिया 2020' में दिए गये हैं। साथ ही परमाणु, अंतरिक्ष और रक्षा प्रौद्योगिकी के विकास पर खासतौर से बल दिया गया है।

अब हमारे पास एक स्पष्ट सोच है कि भारत कैसे 2020 तक आर्थिक रूप से विकसित, दुनिया के चार प्रमुख मुल्कों में शामिल हो सकता है। इस सोच पर अभी काम होना बाकी है। इसके लिए हमें मजबूत इच्छा शक्ति के साथ एकजुट होकर काम करने की जरूरत है। इसके लिए हमें तत्काल छोटे-मोटे लाभ हासिल करने का मोह छोड़कर राष्ट्र की दीर्घकालीन संपन्नता और मजबूती के बारे में सोचना होगा। यह भारत की नयी पीढ़ी के लिए एक चुनौती भी है।

"स्वर्ग तलवारों के साये में निहित है"

1990 के दशक के मध्य में जब हम 'विजन 2020' पर काम कर रहे थे तो राष्ट्रीय नेतृत्व ने हमारे न्यूक्लीयर स्टेटस (परमाणु स्थिति) में दिलचस्पी लेनी शुरू की। विज्ञान समुदाय और रक्षा क्षेत्र में यह काफी समय पहले ही साफ था कि हमारी परमाणु क्षमताएँ दुश्मन-मुल्कों की तुलना में काफी पिछड़ती जा रही हैं। ऐसे में भारत को एक सशक्त परमाणु संपन्न राष्ट्र बनने की जरूरत है। और इसके लिए इसे परमाणु बम का परीक्षण करना होगा। वर्ष 1991 में आर्थिक संकट से उबरने के साथ ही अब हमारे सामने अपनी परमाणु क्षमता को परखने का उचित अवसर आ गया था।

तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने बड़े चुपचाप ढंग से परमाणु परीक्षण का विचार किया। परीक्षण की तिथि 19 दिसंबर, 1995 तय की गई थी, यहाँ तक कि दिसंबर माह के मध्य में परीक्षण स्थल पर एक परमाणु बम भी रख दिया गया था। इसके बावजूद यह परीक्षण नहीं हो सका।

दरअसल 15 दिसंबर को 'द न्यूयार्क टाइम्स' ने रिपोर्ट दी कि अमेरिकी जासूसी सेटेलाइट ने राजस्थान के मरूस्थल में परमाणु परीक्षण संबंधी तैयारियों की तस्वीरें कैद की हैं। इससे प्रधानमंत्री राव पर परीक्षण को रोकने के लिए दूसरे मुल्कों, खासकर अमेरिका का काफी दबाव पड़ा। स्थिति यहाँ तक आई कि खुद अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने इस संबंध में उनसे फोन पर बात कर परीक्षण न करने का आश्वासन लिया। परिणामस्वरूप परीक्षण टाल देना पड़ा।

मेरे विचार से भारत अपनी रक्षा जरूरतों के लिए परमाणु हथियार विकसित कर रहा था। खासकर तब जबकि उसके पड़ोसी दुश्मन मुल्क अपनी क्षमताएँ बढ़ाने को आतुर थे। ऐसे में परमाणु संपन्न अन्य राष्ट्रों को भारत के रास्ते में आड़े आने की जरूरत नहीं थी।

14 जनवरी, 1996 को मैंने प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा कि परमाणु अप्रसार संधि (सी. टीबीटी) को नजरंदाज करें और जितनी जल्दी हो सके परमाणु परीक्षण करवाएँ। मैंने महसूस किया कि वे इस उद्देश्य के लिए प्रतिबद्ध तो थे, लेकिन अभी इस योजना पर अमल करने के पक्ष में नहीं थे।

सन् 1996 में आम चुनाव हुए तो प्रधानमंत्री नरसिंह राव के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार हार गई। जनमत त्रिशंकु लोकसभा के पक्ष में आया। राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। वाजपेयी ने सरकार तो गठित की, लेकिन वे 545 सदस्यों के सदन में 200 से ज़्यादा सदस्यों का समर्थन हासिल नहीं कर पाए। नतीजतन तेरह दिन के भीतर ही उन्हें इस्तीफा देना पड़ा और उनकी सरकार चली गई। इस सरकार में प्रमोद महाजन रक्षा मंत्री थे।

हालाँकि वाजपेयी सरकार का यह कार्यकाल महज तेरह दिन का रहा, लेकिन इतने अल्प समय में भी निवर्तमान प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने नये प्रधानमंत्री वाजपेयी से राष्ट्र द्वारा परमाणु परीक्षण संबंधी तैयारियों के बारे में चर्चा की थी।

वाजपेयी के बाद एच.डी. देवगौड़ा की सरकार आई तो उन्होंने उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव को रक्षा मंत्री बनाया। मैंने उनसे बड़ी बारीकी से परमाणु परीक्षण संबंधी बातें की। इस विषय पर उनके और मेरे बीच इतने प्रगाढ़ संबंध बने कि उन्होंने मुझे इसके बारे में हिन्दी में कुछ अध्याय भी उपलब्ध कराये। मुलायम सिंह जी ने मुझे 8 दिसंबर, 1985 को गठित 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क)' के बारे में अपनी सोच से भी अवगत कराया। उन्होंने आर्थिक रूप से भारत के यूरोपीय संघ से जुड़ने और भारतीय उपमहाद्वीप में लोगों की स्वतंत्र आवाजाही को लेकर गजब की क्षमता दिखाई। मुलायम सिंह जी चाहते थे कि अपना राष्ट्र परमाणु संपन्न हो जाए। उन्होंने मुझसे आवश्यक सामग्री के साथ परमाणु परीक्षण लिए तैयार रहने की बात कही, लेकिन प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा ने इस सिलसिले में उत्साह नहीं दिखाया। यहाँ तक कि उन्होंने किसी भी तरह के परमाणु परीक्षण की अनुमति देने से इनकार कर दिया।

एक साल के भीतर ही तीसरी बार सरकार बदली। अप्रैल 1997 में कांग्रेस ने देवगौड़ा सरकार से समर्थन वापस लिया तो वह धराशाई हो गई।

देवगौड़ा सरकार के विदेश मंत्री इंद्र कुमार गुजराल की उस वक्त अमन-पसंद इनसान के रूप में बड़ी इज्जत थी। वह गठबंधन के नये नेता चुने गये। नये प्रधानमंत्री गुजराल ने देवगौडा मंत्रिमंडल के सभी मंत्रियों को अपनी सरकार में बनाए रखा। इनमें रक्षा मंत्री मुलायम सिंह यादव भी शामिल थे।

प्रधानमंत्री गुजराल के विचार से 1997 का वर्ष परमाणु हथियारों के परीक्षण के लिए सही वक्त नहीं था। वे समझते थे कि यह परीक्षण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की उदार आर्थिक व्यवस्था

के लिए नुकसानदायक साबित हो सकता है। वे यह भी महसूस करते थे कि परमाणु परीक्षण से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिक्रियास्वरूप जो तूफान मचेगा वह उनकी गठबंधन सरकार के लिए अच्छा नहीं होगा। इससे उनकी परेशानियाँ बढ़ सकती हैं।

इसका आशय यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि प्रधानमंत्री गुजराल राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति गंभीर नहीं थे। नवंबर 1997 में गुजराल सरकार ने मुझे देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किये जाने की घोषणा की। आम जनता और अंतरराष्ट्रीय समुदाय के लिए यह स्पष्ट संदेश था कि सरकार के लिए राष्ट्र की सुरक्षा काफी अहम है। भौतिक विज्ञानी सर सीवी रमण के बाद मैं देश का सर्वोच्च सम्मान हासिल करने वाला दूसरा वैज्ञानिक था। सर रमण को 1954 में भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए सम्मानित किया गया था।

हालाँकि इस सम्मान के बाद भी मैं अपने काम में और संतुष्ट होने की जरूरत समझ रहा था। मैं आकलन कर रहा था कि आखिर हमारी परमाणु क्षमताएँ दुश्मन मुल्कों के सामने कैसे कारगर साबित हो सकती हैं! इसके बाद मैंने सोचा कि हमें आगे के लिए तैयार रहना चाहिए।

> "भारत को दुनिया के सामने मजबूती से खड़ा होना होगा। हमें एकजुट होकर करोड़ों लोगों के देश की तरह सोचना और काम करना होगा न कि लाखों लोगों के देश की तरह। पिछले कुछ वर्षों के अनुभव हैं कि जिन मुल्कों में लोगों ने ऐसा नहीं किया वे महान सभ्यता का निर्माण नहीं कर सक"

सन् 1998 का आम चुनाव परमाणु परीक्षण के मकसद की दिशा में बेहतर संकेत लेकर आया। भारतीय जनता पार्टी को मिले जनसमर्थन में राजनीतिक स्थिरता की संभावनाएँ दिखाई दीं। अपने चुनाव अभियान में भाजपा ने देश के परमाणु कार्यक्रम को मजबूत बनाने का इरादा जताया था। ऐसे में पार्टी को मिले जनमत से साफ था कि जनता देश को परमाणु संपन्न ताकत के तौर पर देखना चाहती है। जनता ने अपना इरादा जताया कि परमाणु संपन्न दुश्मन का मुकाबला करने और दुनिया के ताकतवर मुल्कों की बराबरी में खड़ा होने के लिए यह जरूरी है।

भाजपा नेतृत्व की गठबंधन सरकार के लोकसभा में विश्वासमत हासिल करने के एक पखवाड़े के भीतर ही प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मुझे एवं आर. चिदंबरम को अपने पास बुलाया और परमाण ु परीक्षण के लिए अधिकृत किया। नौकरशाही से हमारे साथ सिर्फ प्रधानमंत्री के विश्वस्त और प्रधान सचिव बृजेश मिश्र को संबद्ध किया गया। परीक्षण संबंधी रिपोर्ट देने के लिए तीस दिन का समय निर्धारित किया गया। इस पर मैंने परीक्षण के लिए 11 मई, 1998 का दिन सुझाया, बुद्ध पूर्णिमा का एक ऐसा दिन जब चाँद अपने पूरे शबाब पर होता है। बिना किसी विवाद के सभी ने इस पवित्र तिथि पर अपनी मुहर लगा दी।

अतीत में सन् 1995 के कटु अनुभव को देखते हुए परमाणु परीक्षण का कार्यक्रम बहुत ही गोपनीय ढंग से चलाने का निर्णय लिया गया। हमें याद था कि उस वक्त अमेरिका ने इसकी

भनक लगते ही कैसे हमारे रास्ते में रोड़ा अटका दिया था। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी भी इसे बखूबी समझ रहे थे। यही वजह है कि उन्होंने परीक्षण की तैयारियों की किसी को जरा भी भनक नहीं लगने दी। उन्होंने इस योजना के बारे में अपने मंत्रिमंडल के सहयोगियों और यहाँ तक कि रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीज को भी नहीं बताया। परीक्षण का दायित्व निभाने जा रही हमारी टीम छोटी थी और हमें भी गोपनीयता का खयाल रखना था।

परमाणु परीक्षण के लिए दूरदराज के जिस स्थान 'पोखरण' का चयन किया गया वह किसी के लिए नया नहीं था। पहले भी यह दुनिया की नजरों में आ चुका था। सन् 1974 में भारत का पहला परमाणु परीक्षण यहीं संपन्न हुआ था। यहाँ 1974 की तरह हमें भी भूमिगत परीक्षण करना था। पोखरण राजस्थान के थार रेगिस्तान में जैसलमेर जिले का एक दूरदराज का इलाका है। यह इलाका चारों तरफ से चट्टानों, बालू और नमक की पाँच झीलों से घिरा हुआ है। वास्तव में 'पोखरण' का मतलब 'पाँच झीलों का इलाका' है जहाँ आदमी को मृगमरीचिका का अनुभव होता है। दूर से आदमी जिन चीजों को पानी के तालाब समझ बैठता है, पास आने पर उन्हें देख खुद को ठगा–सा महसूस करता है। जिस जगह को परीक्षण के लिए चुना गया वह शहर से कुछ दूर थी।

पोखरण परीक्षण रेंज भारतीय सेना की इंजीनियर्स कॉर्प्स की 58वीं रेजीमेंट के अधीन थी। रेजीमेंट ने यहाँ पिछले कुछ सालों के दौरान तीन गहरे शाफ्ट (खान–कूप) यानी खान में जाने के रास्ते रात को काम पर लगकर खोदे हुए थे, ताकि सेटेलाइट की जासूसी से बचा जा सके। क्षेत्र में कई सूखे कुएँ भी थे। इनमें से तीन को चौड़ा और गहरा करके तकरीबन 50 मीटर गहरे शाफ्ट में तब्दील कर दिया था। छः शाफ्ट के नाम कोड वर्ड अर्थात् सांकेतिक शब्दों में रखे गए थे। परीक्षण रेंज में पिछले एक वर्ष के दौरान लगातार सुविधाएँ जुटाई जा रही थीं ताकि समय आने पर दस दिन की छोटी–सी अवधि में ही परमाणु परीक्षण संपन्न हो जाए।

परीक्षण के एक दिन पूर्व बम को पोखरण पहुँचाकर परीक्षण वाली जगह पर रख दिया गया। ह्वाइट हाउस नामक लगभग 200 मीटर गहरे शाफ्ट में एक थर्मोन्यूक्लीयर डिवाइस को रखा गया। इसी तरह जिस बम का विस्फोट किया जाना था उसे करीब 150 मीटर गहरे शाफ्ट ताजमहल में रखा गया। हजारों टन का पहला विस्फोट कुंभकरण शाफ्ट में किया जाना तय हुआ। इस परीक्षण की दूसरी श्रृंखला नवतला के लिए 50–50 मीटर के तीन गहरे शाफ्टों का चयन किया गया। जिन्हें संक्षिप्त में एनटी 1, एनटी 2 और एनटी 3 नाम दिया गया।

परीक्षण के लिए हर संभव तैयारियाँ कर ली गई थीं। वैज्ञानिकों को बड़ी सावधानी से अकेले ही पोखरण पहुँचना था। परीक्षण स्थल पर जाने से पहले वैज्ञानिकों को सेना की वर्दियां पहनाई गयीं। हमें सेना की पहचान दी गई। पोखरण टेस्ट रेंज में मुझे 'मेजर जनरल पृथ्वीराज' के रूप में जाना गया। परीक्षण इतना महत्वपूर्ण था कि शंका की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई।

11 मई 1998 को पोखरण के रेगिस्तानी इलाके में पहुँचे तो वहाँ धूल उड़ रही थी। हालाँकि क्षेत्र में विस्फोट के बाद रेडियो–एक्टिव दुष्प्रभाव पड़ने का कोई खतरा नहीं था। इसके सारे इंतजाम कर लिए गए थे कि आबादी पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े। इसके बावजूद हवा का रुख शहर की तरफ देखते हुए हमने सावधानी के तौर पर कुछ देर के लिए प्रतीक्षा करना बेहतर समझा। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इस दिन के लिए अपने सारे कार्यक्रम निरस्त कर दिए थे। वे परीक्षण क्षेत्र के करीब

ही एक जगह पर ठहरे हुए थे। इस मौके पर मुझे एक ऐसा सुंदर वाक्य याद आया जिसे मैंने जवानी के दिनों में कहीं पढ़ा था– "तुम्हें अक्सर उसका इंतजार करना चाहिए जो इतना कीमती हो कि उसका इंतजार किया जा सके।" मैं और मेरे साथी भी वर्षों से परीक्षण के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसे में कुछ घंटों की प्रतीक्षा हमारे लिए चिंता का कारण नहीं थी।

मैंने प्रधानमंत्री को फोन पर बताया कि हवा का रुख शहर की ओर है लिहाजा परीक्षण में कुछ घंटे का समय लग सकता है। सायं 3 बजकर 43 मिनट और 44.2 सेकेंड पर तीनों न्यूक्लीयर डिवाइस फट पड़े। एक साथ हुए इन धमाकों से क्षेत्र का वातावरण धूल–धूसरित हो गया। लगभग क्रिकेट के मैदान के बराबर क्षेत्र की हवा में धूल के गुबार छा गये। इस परीक्षण से किसी भी जान को कोई खतरा नहीं हुआ। यह वास्तव में एक सफल परीक्षण था। सरकारी अधिकारी इस परीक्षण से बेहद उत्साहित हुए। प्रधानमंत्री के प्रधान सचिव बृजेश मिश्र ने तत्काल संवाददाताओं से कहा कि "इस परीक्षण ने साबित किया है कि भारत का परमाणु शस्त्र कार्यक्रम काफी मजबूत है।"

दो दिन बाद 13 मई को एन.टी.1 एन.टी.2 डिवाइस में भी भूमिगत विस्फोट हुआ। एन.टी.3 डिवाइस में रखा हुआ बम आर. चिदंबरम के आदेश पर शाफ्ट से वापस ले लिया गया। उन्हें लगा कि टीम ने जरूरत के मुताबिक पाँच परीक्षण कर ही लिये हैं, लिहाजा इसे क्यों बेकार किया जाए!

पोखरण–2 परीक्षण ने साबित कर दिया कि भारत एक सशक्त परमाणु संपन्न राष्ट्र है। हमारे पास मिसाइलों से दागने के लिए पर्याप्त मात्रा में हल्के और भारी परमाणु हथियार उपलब्ध हैं।

28 मई 1998 को पाकिस्तान ने बलूचिस्तान प्रांत के अंतर्गत चागी जिले के रास कोह हिल्स में परमाणु परीक्षण किया। इसके बाद उसने 30 मई 1998 को भी एक और परीक्षण किया। वहाँ के तत्कालीन प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने बड़े दर्प से कहा कि "यदि भारत ने परीक्षण नहीं किया होता तो पाकिस्तान भी नहीं करता। नयी दिल्ली के ऐसा करने से हम पर भी अपनी जनता का दबाव बढ़ गया था।"

मई 1998 के परीक्षण पर पश्चिमी मीडिया में मचे बवाल पर मुझे हँसी आई। 'आखिर ब्रिटेन के पास क्यों परमाणु हथियार होने चाहिए और भारत के पास क्यों नहीं होने होने चाहिए?' तब किसी ने क्यों कुछ नहीं कहा जब फ्रांस अपने द्वारा अधिकृत अल्जीरिया में वातावरण–संबंधी परमाणु परीक्षण कर रहा था? उसके इस परीक्षण के बाद पीटीबीटी–42 बनी। क्या ये जरूरी सवाल नहीं हैं? क्या इनका जवाब महज इतना ही होना चाहिए कि ब्रिटेन और फ्रांस के पास परमाणु परीक्षण का जन्मसिद्ध अधिकार है और अन्य मुल्कों को परमाणु हथियार न रखने की आचार–संहिता का पालन करना चाहिए? इस मसले पर पश्चिम ही नहीं, बल्कि रूस और चीन ने भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। बहरहाल भारत की दिलचस्पी परमाणु संपन्न दुनिया में अपनी जगह बनाने की थी और उसने ऐसा संभव कर दिखाया।

> "यदि तुम अपने दुश्मन से शांति चाहते हो तो तुम्हें उसके साथ काम करना होगा। इसके बाद वह तुम्हारा दुश्मन नहीं, बल्कि पार्टनर (सहयोगी) हो जाएगा।"

20 फरवरी, 1999 को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने बाघा बॉर्डर पर दोस्ती के दरवाजे खोलकर एक नयी इबारत लिखी। दोनों मुल्कों के बीच 51 वर्षों से चली आ रही नफरत को दरकिनार कर प्रधानमंत्री वाजपेयी जब 21 प्रतिष्ठित भारतीयों के साथ दिल्ली–लाहौर बस सेवा से बाघा बॉर्डर चेक–पोस्ट पर पहुँचे तो वहाँ पाक प्रधानमंत्री नवाज शरीफ उनके स्वागत में खड़े थे।

वास्तव में यह भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास का उल्लेखनीय क्षण था। परमाणु परीक्षण के बावजूद दोनों तरफ का नेतृत्व शांति और सह–अस्तित्व की भावना के साथ आगे आ रहे था। बॉर्डर के दोनों ओर के सैकड़ों लोगों में इसका गजब का उत्साह दिखाई दिया। इस बेहतरीन मौके को उन्होंने शानदार जश्न के रूप में मनाया। सन् 1999 में पाकिस्तानी सेना द्वारा कश्मीर में वास्तविक नियंत्रण रेखा को पार कर घुसपैठ की गई तो इसके परिणामस्वरूप कारगिल युद्ध हुआ। भारत ने पाकिस्तानी सैनिकों से अपनी धरती खाली करवाई। यह स्थिति सचेत करती है कि कोई शांतिपूर्ण माहौल कैसे बिगड़ जाता है! ताकतवर कैसे शांति भंग करने का इरादा रखता है!

हमारे नेताओं को चाहिए कि तनाव को बढ़ावा देने की प्रवृत्तियों को दरकिनार कर निरंतर शांति कायम करने के प्रयास करते रहें। इसके लिए कोई भी मौका हाथ से न जाने दें। महाभारत की प्राचीन शिक्षाएँ इस बारे में प्रासंगिक हैं। भीष्म पितामह जब बाणों की शैय्या पर लेटे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे तो उस वक्त भी पांडवों ने उनके पास जाकर शिक्षा ग्रहण की थी। भीष्म ने उनसे कहा था कि "कोई किसी का मित्र नहीं। कोई किसी का शत्रु नहीं। परिस्थितियाँ ही किसी को मित्र या शत्रु बनाने के लिए उत्तरदायी होती हैं।"

दुनिया बदलेगी, हमें कारगर हो सकने वाली रणनीतिक सोच अपनानी होगी। जिस तरह कोई इनसान अपनी परिस्थितियों से सजग होकर उनके हिसाब से सामंजस्य बिठाने की कोशिश करता है, ठीक इसी तरह देश को भी परिस्थितियों के हिसाब से कदम उठाना होगा।

वर्ष 1999 आधा बीत जाने के बाद में मैंने महसूस किया कि अब डीआरडीओ को अलविदा करने का वक्त आ चुका है, लेकिन केन्द्र सरकार मुझे सेवानिवृत्त करने को इच्छुक नहीं थी। नवंबर माह में सरकार ने प्रिंसिपल साइंटिफिक एडवाइजर (पीएसए– प्रधान वैज्ञानिक सलाहकार) का कार्यालय बनाया। पहली बार इस पीएसए में कोई नियुक्ति होनी थी। पीएसए को नीति, रणनीति, मिशन और अनुसंधान पर ध्यान देना था। कमजोर आधारभूत ढाँचे में ही विज्ञान और तकनीकी को बढ़ावा देना था। इसके अलावा सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में सरकारी विभागों, संस्थानों और उद्योग को सहयोग देना था। मंत्रालय के वैज्ञानिक सलाहकार समिति के चेयरपर्सन के तौर पर मैंने भी काम किया।

८

उन्नति

"मजबूती आपके भीतर ही होती है। इसे सर्वशक्तिमान के अलावा कोई और नहीं दे सकता।"

30 जून, 2001 को मैं दिल्ली में बोचानवासी श्री अक्षर पुरुषोत्तम स्वामी नारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.) के प्रमुख स्वामी जी से मिला। स्वामी जी की सज्जनता और गरिमामय व्यक्तित्व ने मुझे इस कदर प्रभावित किया कि मैं उनके सम्मुख अपने विचार प्रकट करने को उत्सुक हुआ। मैंने उनसे कहा कि 1857 से पहले भारत के समक्ष आजादी का सपना था, 90 वर्षों के लंबे संघर्ष के बाद यह साकार हो पाया। उस दौरान समाज के तमाम लोग अमीर, गरीब, बच्चे, बुजुर्ग, साक्षर, निरक्षर, सामान्य, कुलीन सभी एकजुट होकर अपने उद्देश्य में तल्लीन थे। उनका लक्ष्य भारत को आजाद देखना था।

मैंने स्वामी जी को परमाणु ऊर्जा, अंतरिक्ष अनुसंधान और रक्षा अनुसंधान जैसे तीन प्रमुख क्षेत्रों में विगत 40 वर्षों के दौरान हुई राष्ट्र की प्रगति से अवगत कराया। मैंने कहा कि मुझे यह जानकर दुख हुआ कि आजादी के 50 वर्षों के बाद भी कोई नयी सोच नहीं दिखाई दी। इस वक्त तक भारत एक विकासशील देश था। यह न तो आर्थिक रूप से सक्षम हुआ, न यहाँ सामाजिक एकजुटता दिखाई दी और न ही स्थिरता। वास्तव में राष्ट्र के सम्मुख अपनी सुरक्षा एक बड़ी चुनौती रही। देश में ऊर्जा की भारी कमी रही। ऐसे में आयातित तेल और लचर तकनीकी पर ही निर्भर रहना पड़ा।

इसके बाद मैंने बड़ी शालीनता से स्वामी जी के सामने अपने दिल की बात रखी। उन्हें अपनी राय से अवगत कराया कि देश की समस्याओं का समाधान सिर्फ सरकार के जनमत हासिल कर लेने या पर्याप्त धन होने भर से संभव नहीं है। लोगों को भी राष्ट्र के विकास के लिए आगे आना होगा। भारत के विकास के लिए तीन तरह के लोगों की जरूरत है मसलन– पुण्यात्मा, पुण्य नेता और पुण्य अधिकारी। आखिर इस तरह के लोग कहाँसे आएँगे?

स्वामी जी ने मुझे एक स्पष्ट जवाब दिया कि "लोग ईश्वर में विश्वास करें। हर स्थिति में वे ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव रखें। जब यह भाग्य का विषय है तो हममें से कोई इसे खारिज नहीं कर सकता। इसे बदल नहीं सकता या किसी पर थोप नहीं सकता। सब कुछ ईश्वर के हवाले कर दो।'' स्वामी जी ने लगभग एक घंटे से अधिक समय की बातचीत में अपने इन विचारों को विस्तार से रखा।

अब मैं समझ गया था कि स्कूलों में अकादमिक शिक्षा के साथ ही विज्ञान और अध्यात्म के बारे में भी बताया जाना चाहिए। जब बच्चों को शुरू से ही जीवन-मूल्यों के बारे में समझाया जाएगा, तभी वे गुणवान नागरिक बन सकेंगे।

प्रमुख स्वामी जी के विचारों से मैं काफी प्रभावित हुआ। उनके साथ हुई पहली मुलाकात और बातचीत के बाद मैंने उनसे पत्र-व्यवहार का सिलसिला शुरू किया, इस दृष्टि से कि अनगिनत लोगों की तरह वे मेरे भी एक आध्यात्मिक गुरु, दोस्त और मार्गदर्शक होंगे।

"दैवीय निराशा आध्यात्मिक जागरूकता की शुरुआत है, क्योंकि यह ईश्वरीय अनुभूति की आशा जगाती है।"

30 दिसबर 2001 को झारखंड राज्य की 'साइंस एंड टेक्नोलॉजी कौंसिल (विज्ञान एवं तकनीकी परिषद)' की बैठक में भाग लेने के लिए मैं हेलीकाप्टर में राँची से बोकारो की ओर जा रहा था। रास्ते में पायलट ने बताया कि हेलीकाप्टर के राउटर (घूमने वाले हिस्से) में कुछ बड़ी गड़बड़ी लगती है। यह स्थिति हमारे लिए काफी डरावनी थी। बोकारो में हेलीकाप्टर के उतरने से कुछ क्षण पहले लगभग साढ़े चार बजे शाम को उसका इंजन फेल हो गया। अचानक विमान तकरीबन सौ मीटर की ऊँचाई से जमीन पर गिरा। यह चमत्कार ही था कि विमान में सवार हम सभी लोग सुरक्षित बच गए। कहने की जरूरत नहीं है कि हमारी स्थिति उस वक्त कितनी भयंकार रही होगी।

उस रात मुझे एक अजीब सपना हुआ। सपने में मैंने खुद को चाँदनी रात में एक मरुस्थल में पाया। चाँदनी में बालू के कण चाँद की तरह चमक रहे थे। पाँच लोग मेरे साथ गोलाई में खड़े थे। ये पाँच लोग- सम्राट अशोक, खलीफा उमर, अल्बर्ट आईंस्टीन और महात्मा गाँधी थे। इन ऐतिहासिक शख्सियतों का मैं भारी प्रशंसक रहा। अपने समय के इन मनीषियों ने वैचारिक धरातल पर जो कदम बढ़ाये, वे मेरा मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध हुए।

अगली सुबह मैंने समाचार पत्र में पढ़ा कि उत्तर प्रदेश के मैनपुरी में वह विमान दुर्घनाग्रस्त हो गया जिसमें युवा नेता माधव राव सिंधिया और कुछ पत्रकार सवार थे। विमान में सवार लोगों में से कोई भी बच नहीं पाया। इस खबर से मैं बुरी तरह काँप उठा। ऐसा लगा कि मेरी रीढ़ हिल गई है। मैं सोचने लगा कि यदि बोकारो पहुँचने से कुछ समय पहले ही हमारा हेलीकाप्टर खराब हुआ होता तो हमारी क्या दशा रहती! क्या जो स्वप्न में मैंने देखा, उसके और मेरे जीवित बचे रहने के बीच कोई दिव्य संदेश था?

दिल्ली लौटने पर मैं प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से मिला और उनसे खुद को सरकारी सेवा से कार्ययुक्त करने का निवेदन किया। मैंने कहा ''सर, मैं सूर्य के चारों ओर की सत्तर कक्षाएँ

पूर्ण कर चुका हूँ। क्या अब मैं छुट्टी ले सकता हूँ। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने मुझे कैबिनेट मंत्री स्तर का पद देने की बात कही, लेकिन मैंने विनम्रतापूर्वक से उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कुछ समय तक गंभीर मौन रहने के बाद प्रधनमंत्री बोले कि जैसी आपकी मर्जी।''

नवंबर 2001 में मैंने अन्ना मलाई विश्वविद्यालय का रुख किया और वहाँ टेक्नोलॉजी एण्ड सोशल ट्रांसफार्मेशन (तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन) विभाग में प्रोफेसर के तौर पर फिर से अपनी सेवाएँ देनी शुरू कीं। मैं अध्यापन और शोध में रम गया। अक्सर मैं चाहता भी यही था, लेकिन अपने सरकारी दायित्वों का निर्वाह करने के चलते मैं चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाता था। अब मेरे सामने स्पष्ट था कि मुझे ऐसे मेहनती नौवजवान तैयार करने हैं जो अपने काम में दक्ष होने के साथ अध्यात्म की रोशनी से भी जगमगा रहे हों। यह काम केवल क्लासरूम में पढ़ाने भर से संभव नहीं था, बल्कि इसके लिए कुछ और खास करने की भी जरूरत थी।

मैंने महसूस किया कि इसके लिए मुझे देश-भर का भ्रमण करना चाहिए। युवाओं से सीधे मिलकर उन्हें अपनी बात कहनी चाहिए। जल्दी ही मैंने देखा कि भारत का बौद्धिक युवा मस्तिष्क प्रकाशमान होने के लिए मचल रहा है। 11 अप्रैल, 2002 को मुझे गुजरात के आनंदालय हाई स्कूल में एक कार्यक्रम में आमंत्रित किया गया। कार्यक्रम के पहले दिन जब मैं शाम को अहमदा बाद पहुँचा तो वहाँ कफ़्यू लगा हुआ था।

मैं पुलिस एस्कॉर्ट में आनंदालय पहुँचा। अगले दिन यहाँ स्कूल में औपचारिक परिचय और विचारों का आदान-प्रदान हुआ। मेरे भाषण के बाद एक छात्रा ने प्रश्न पूछा कि 'हमारा दुश्मन कौन है?' मेरे पास तत्काल जवाब नहीं था इसलिए फिलहाल मैंने वहाँ मौजूद अन्य बच्चों से इस बारे में सोचने को कहा। कुछ समय बाद एक लड़की ने उत्तर दिया, ''सर, हमारा दुश्मन गरीबी है।'' उसके इतने स्पष्ट उत्तर से मैं अवाक् रह गया। उसका जवाब ऐसा था, मानो सूरज काले मेघ को चीरते हुए चमक उठा हो।

गंभीर विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि भौतिक गरीबी से कहीं ज्यादा खराब आध्यात्मिक गरीबी है। आत्मा की अवमानना वास्तव में हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। इस वक्त मुझे आशा जगी कि जीवन के शेष वर्ष युवाओं से सीधी बातचीत करने में बिताऊँ। मैंने महस. ूस किया कि मुझे युवाओं को सिखाने के साथ ही आध्यात्मिक अस्तित्व के बारे में भी जागरूक करना होगा ताकि उनका जीवन प्रकाशमान हो सके। यही मेरे गुरु ने मेरे लिए भी किया था। 10 जून, 2002 को अन्ना यूनिवर्सिटी में वापस लौटने पर मुझे वाइस चांसलर कार्यालय से एक जरूरी सूचना मिली कि प्रधानमंत्री कार्यालय मेरे बारे में पूछ रहा था। इसके बाद प्रधानमंत्री कार्यालय से सीधी बात कराने के मकसद से मुझे वाइस चांसलर कार्यालय में बुलाया गया। वहाँ से प्रधानमंत्री कार्यालय से फोन मिलाया गया। कुछ समय बाद प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी लाइन पर आए। उन्होंने कहा, ''कलाम साहब देश आपको राष्ट्रपति देखना चाहता है। मैंने उनका आभार व्यक्त करते हुए निवेदन किया कि मुझे एक घंटे का समय दे दीजिए ताकि मैं इस बारे में अपने परिजनों से बातचीत कर सकूँ। मेरा उत्तर पूरा सुनने से पहले ही उन्होंने कहा, "कृपया 'ना' मत कहिएगा, मैं आपकी जुबान से केवल 'हाँ' सुनना चाहता हूँ।"

"वस्तुओं का स्वभाव (गुण) ही उनका धर्म है।"

18 जून, 2002 को मैंने राष्ट्रपति पद के लिए नामांकन किया। जब मुझसे पूछा गया कि नामांकन कराने का उचित समय क्या होगा, तो मैंने कह दिया– दुनिया ज्योतिष नहीं, बल्कि खगोलशास्त्र के अनुरूप चल रही है। मैं उच्च पद पर आसीन होने की तरफ बढ़ रहा था, लेकिन यह भी लगता था कि मुझे उसी तरीके से काम करते रहना होगा जिससे जीवन में मजबूती मिली है। मैं हमेशा एक वैज्ञानिक बना रहूँगा। चुनाव अभियान के दौरान मेरे धर्म के बारे में सवाल उठने अपरिहार्य थे। मेरे और पूर्व राष्ट्रपतियों जाकिर हुसैन और फखरुद्दीन अली अहमद के बीच तुलना नहीं हो सकती थी क्योंकि दुनिया में मुस्लिमों के बारे में जो आम राय है, दरअसल मैं वैसा मुस्लिम नहीं था। लिहाजा मुझे सिर्फ एक मुस्लिम के तौर पर नहीं देखा गया। एक मुस्लिम का रामेश्वरम् में जन्म, वीणा वादन और भगवत गीता में रुचि, लोगों के लिए असाधारण बातें थीं।

वोट बैंक की रूढ़िवादी राजनीति में मुझे चुनौती मिलना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। भारतीय समाज में विविधताएँ भी हैं। कुछ विश्लेषकों का ध्यान भारत की संपन्न प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में मेरी रूचि को लेकर रहा। एक पत्रकार ने लिखा कि "देश के अन्य नागरिकों की तरह भारतीय मुस्लिम का अपने गाँव, जिला और राज्य को बनाने में योगदान रहा है। काफी हद तक कलाम भी इसी परंमपरा का अंग हैं। यह परंपरा आज भी अस्तित्व में है, लेकिन ग्लोबल मीडिया की धुन में हम स्मृतिहीनता के शिकार हो चुके हैं। यही वजह है कि हम अपने मस्तिष्क में मुस्लिम की एकरंगी पेंटिंग्स बना लेते हैं। क्या कलाम हिन्दू धर्म ग्रंथों को लेकर उसी तरह लोकप्रिय नहीं हैं जैसेकि 'कंबन रामायण' के रचयिता चेन्नई के जस्टिस इस्माईल देशभर में प्रसिद्ध हैं। अब्दुल रहीम खान-ए-खाना के संस्कृत छंदों में दशरथ पुत्र राम के प्रति जैसा श्रद्धा भाव है, वही कलाम के भीतर भी है।"

"जो काम जरूरी हो उसी से शुरुआत करें। उसके बाद
वह करें जो संभव हो। अचानक आप असभंव को भी
संभव बनाने लग जाएँगे।"

18 जुलाई, 2002 को मैं देश का 11वाँ राष्ट्रपति चुन लिया गया। पहली बार देश के किसी वैज्ञानिक को राष्ट्रपति चुनाव में 90 प्रतिशत वोट पड़े। राष्ट्रीय राजधानी के बाहर राष्ट्रपति के रूप में मैंने सबसे पहले गुजरात का भ्रमण किया। यह राज्य हाल की दो विनाशलीलाओं का दंश झेल चुका था। इनमें से एक भुज में आए भूकंप से 20 हजार लोग कालकवलित हुए थे, लाखों अन्य घायल भी हुए थे। तेरह महीने बाद की दूसरी विनाशलीला पूरी तरह मानव-रचित थी।

27 फरवरी, 2002 को गुजरात राज्य सांप्रदायिक हिंसा से कराह उठा। गोधरा में रेल की दो बोगियों को आग के हवाले कर दिया गया। क्रोधित उपद्रवियों ने आग बुझाने के प्रयासों को भी बाधित किया। इससे 59 यात्री जलकर स्वाहा हो गए, जिनमें महिलाएँ और बच्चे

भी शामिल थे। इसके प्रतिशोधस्वरूप राज्य में कई जगहों पर खूनी घटनाएँ हुईं। महीनों तक स्थिति तनावपूर्ण बनी रही। ऐसे में लोग अपने घरों तक नहीं लौट पाए।

गुजरात दंगे ने देश के बहुधर्मी समाज के अस्तित्व पर सवाल खड़े किए। क्या वास्तव में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, बहुसंख्यकों की गुडविल (अच्छी चाह) की वजह से है। क्या दिल्ली और कश्मीर 1984 और 1990 में इस गुडविल की असफलता नहीं देख चुके हैं।

विवेकहीन सांप्रदायिक दंगों से मैं सदैव भयभीत हुआ हूँ। समझ नहीं आता कि कैसे कोई आम आदमी हिंसक होकर निर्दोष लोगों, महिलाओं और बच्चों की हत्या कर देता होगा। देश के अधिसंख्य लोगों को चाहिए कि हिंसा की मानसिकता को हतोत्साहित करें। इसके लिए वे नफरत पैदा करने वालों के साथ किसी तरह का व्यवहार न रखें। जो लोग सांप्रदयिक हिंसा फैलाने का काम करते हैं उनसे संबंध-व्यवहार रखने की कोई जरूरत नहीं।

10 अगस्त, 2002 को जब मैं सरदार पटेल अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचा तो वहाँ मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी जी और उनकी पूरी कैबिनेट से मिलकर आश्चर्यचकित हुआ। मैंने गुजरात में 12 जगहों का भ्रमण किया। तीन राहत शिविरों और उन नौ दंगा प्रभावित इलाकों में गया जहाँ जान-माल का भारी नुकसान हुआ था। मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने मेरी यात्रा के दौरान एस्कॉर्ट सुरक्षा तैनात रखी। मैंने भ्रमण के दौरान पीड़ितों की शिकायतों और याचिकाओं के बारे में मिली जानकारियाँ सीधे मुख्यमंत्री मोदी को दीं और उन्हें इस सबंध में आवश्यक कदम उठाने के सुझाव भी दिए। मैं शाहीबाग रोड स्थित बी.ए.पी.एस. श्री स्वामी नारायण मंदिर भी गया और वहाँ प्रमुख स्वामी जी से मिला। स्वामी जी ने कहा, ''हमारा समाज परेशानियों के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में शांति की जरूरत है। यहाँ हजारों पीड़ित हैं। जिनमें हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों के लोग शामिल हैं, उनकी परेशानियों को खत्म करने के लिए ठोस उपाय करने की सख्त जरूरत है। जीवन पुण्य है। शांति पुण्य है। राष्ट्रपति जी और मुख्यमंत्री जी से मेरी विनती है कि शांति और एकता के लिए काम करें। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि ऐसा दुर्भाग्यशाली दिन फिर कभी किसी व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए न आए।"

स्वामी की तरह यदि समाज के हर इनसान के भीतर दूसरे को सम्मान देने और उसकी दिक्कतों को समझने की भावना हो तो ऐसे माहौल में सांप्रयादिक दंगों की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

राष्ट्रपति कार्यकाल के शुरू के कुछ महीने जनता के बीच और बैठकों में ही बीत गए। इस दौरान गुजरात की दो घटनाओं ने मुझे इस कदर झकझोर दिया कि उन्हें भुला ही नहीं पाया।

मैंने हमेशा अपना जन्म दिन मनाने से परहेज किया है। लेकिन राष्ट्रपति पद पर आसीन होने के बाद मैं जनता के लिए एक बड़ा व्यक्तित्व बन चुका था। ऐसे में जन्म दिन मनाने की परंपरा को टाल पाना काफी मुश्किल था। लिहाजा इसका समाधन मुझे यह सूझा कि इस दिन राष्ट्रीय राजधानी से बाहर रहा जाए। 15 अक्टूबर, 2002 को केन्द्रीय पर्यटन मंत्रालय ने अरुणाचल प्रदेश के तवांग में 'बुद्ध महोत्सव' का आयोजन किया। मुझे भी इसमें आमंत्रित किया गया था। मैंने इस कार्यक्रम में शामिल होने का फैसला कर लिया। मैंने अरुणाचल प्रदेश स्थित एशिया की

प्रसिद्ध गालडेन नामग्याल बौद्ध मठ के बारे में सुन रखा था। बौद्ध भिक्षुओं का यह मठ तवांग चू घाटी में 11 हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित है । मैं भारतीय वायुसेना के एक विमान से पहुँचा। इतनी ऊँचाई पर जाने के लिए ऑक्सीजन मास्क का उपयोग करना पड़ा।

मैंने इस भव्य मंदिर में प्रार्थना की और वहाँ के प्रमुख लामा यानी रिम्पोछे से भी मुलाकात की। मैंने रिम्पोछे से पूछा, ''देश की जनता के लिए मैं यहाँ से क्या संदेश लेकर जाऊं?"

रिम्पोछे ने जवाब दिया, "हिंसा को दरकिनार कर डालें।"

''और, मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ?"

''अपने अहंकार का परित्याग कर दें। यही स्वार्थ और हिंसा को जन्म देने वाला होता है।''

''लेकिन यह कैसे संभव है, हम अपना अहं कैसे छोड़ सकते हैं?''

'मैं' और 'मुझे' को भूल जाइए।

इस सरल, संक्षिप्त और महत्वपूर्ण जवाब को लेकर मैं वापस लौट आया। रिम्पोछे के जादुई शब्दों की रोशनी में मैं देख पाया कि मानव जीवन के कष्टों की वास्तविक जड़ क्या है!

नबंबर 2002 को रमजान का पवित्र महीना शुरू हुआ। दिल्ली की परंपरा के अनुसार इस मौके पर सभी प्रमुख व्यक्ति जैसे कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राजनेता, राजदूत और उद्योगपति इफ्तार पार्टी देते हैं। इनमें वे शाम का भोजन देते हैं और इस तरह सूर्यास्त के बाद मुस्लिम लोग भोजन कर अपना रोजा खोलते हैं। इन पार्टियों में विभिन्न धर्मों के लोग शामिल होते हैं। बहुत से लोग भोजन कर लेने के बावजूद तहे-दिल से इन पर्टियों में शरीक होते हैं। इनमें मौजूद लोग ही नहीं, बल्कि अनुपस्थित रहने वाले भी खबरों में रहते हैं। पिछले कई वर्षों से इफ्तार-पार्टियाँ राजनीतिक विश्लेषकों के लिए महत्वपूर्ण रही हैं। इनके जरिये वे सियासी षड्यंत्र और भविष्य में आकार लेने वाले संभावित राजनीतिक गठबंधनों का अंदाजा लगाते हैं। जो भी हो इतना अवश्य है कि इफ्तार-पार्टी खास होती है।

नये राष्ट्रपति के तौर पर मुझसे भी एक शानदार इफ्तार-पार्टी की उम्मीद थी, लेकिन मेरा दिल इसके लिए गवाही नहीं दे रहा था। आखिर कैसे किसी पार्टी का आयोजन किया जाए, खासकर तब जबकि देश में बहुत से लोगों को खाना न मिल रहा हो? मैंने अपने सचिव पी.एम. नायर से पूछा कि क्या मुझे उन लोगों को दावत देनी चाहिए जो पहले ही खूब खाए-पिए हों? मैंने उनसे यह पता लगाने को कहा कि इफ्तार-पार्टी के आयोजन में कुल कितना खर्च आ जाएगा। यह खर्च लगभग 22 लाख रुपये था। मैंने नायर को निर्देश दिया कि इस पैसे से अनाथों को भोजन, वस्त्र और कंबल मुहैया करा दें। मैंने यह भी कहा कि अनाथों का चयन राष्ट्रपति भवन की एक टीम करे। इस काम में अपने हिस्से का कुछ पैसा देने के अलावा मेरी और कोई भूमिका नहीं रह गई थी।

उस दिन मैंने जो फैसला लिया उसके बाद रात को मुझे अपने पिता का बहुत ख़्याल आया। ऐसा लगा जैसे कि वे मेरे कानों में कह रहे हों, ''जिन्दगी के लुत्फ को मजहब, दुनियावी ऐशो–आराम को बहिस्त के मुनाफे और इनसानों को अल्लाह से ज़्यादा जरूरी समझने से कयामत तयशुदा है।''

पिता के ये वाक्य वास्तव में इहलोक नहीं बल्कि परलोक की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। उनका आशय था कि वास्तव में संसार उस खेत की तरह है जहाँ इनसान परलोक के पुण्य की खेती करता है। इस खेती के लिए बीज ईश्वर की कृपा से हासिल हो सकेंगे। कृपापात्र होने के लिए वैमनस्यता को खत्म करना होगा। यदि तुम्हारा हृदय दयालु और सहिष्णु है तो तुम निश्चित ही पुण्य के पात्र हो। इसके विपरीत यदि कठोर–दिल इनसान हो और किसी को क्षमा करने का जज़्बा नहीं रखते, तो तुम कुछ पा लेने के बावजूद दुखी रहोगे।

९

पुनर्जागरण नायक

"हम सभी एक ब्रह्मांड के अंग हैं, अतः हम सब समान हैं। ईश्वर सबके साथ एक ही तरह का व्यवहार करता है एवं वह हर इनसान को एक समान देखना चाहता है। ईश्वर से हम कुछ भी किस प्रकार प्राप्त करते हैं, असमानता उसी में होती है।"

वर्ष 2013 में जैन मुनियों का एक समूह 20 किलोमीटर से भी अधिक का रास्ता नंगे पाँव तय करके राष्ट्रपति भवन पहुँचा तथा 'Finding Your Spiritual Centre' नामक पुस्तक की पहली प्रति मुझे भेंट की। ये जैन धर्म के श्वेतांबर तेरापंथ वर्ग के दसवें गुरु आचार्य महाप्रज्ञ के विचार एवं सिद्धांतों का संकलन है। मैं उनकी सहिष्णुता एवं दृढ़ निश्चय से चकित रह गया, निश्चित तौर पर उन्होंने इसे अपने धर्म से प्राप्त किया था। इतनी दूर तक पैदल चलकर आने के बावजूद उन्होंने ताजा-दम होने के लिए सिर्फ नींबू-पानी लिया।

आचार्य महाप्रज्ञ से मैं पहली बार 4 नवम्बर, 1999 को मिला। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा, "कलाम साहब, मैं आपको तथा आपके दल को आशीर्वाद देता हूँ। हमारे देश को शत्रुओं के आक्रमण से रोकने के लिए आपने परमाणु बम बनाया। अहिंसा परमो धर्म, धर्म हिंसा तथैव, अर्थात् अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, और धर्म-रक्षार्थ हिंसा भी उसी प्रकार श्रेष्ठ है यानी सही उद्देश्यों के लिए विरोध भी धर्म है। परंतु इसके लिए मेरी दूसरी समझ है। आप एक ऐसे तंत्र की खोज करें जिसके द्वारा परमाणु बम अप्रासंगिक, महत्वहीन तथा निष्प्रभावी हो जाए।"

आचार्य महाप्रज्ञ के प्रबल कथनों ने मुझे मनुष्य की हिंसा की क्षमता पर गहन विचार के लिए मजबूर कर दिया। सामूहिक विनाश के हथियारों के मामले में यह चौंकाने वाला है। परमाणु हथियारों वाले वर्ग में भारत बाद में आया और इसके पास विश्व की महान शक्तियों की अपेक्षा कम हथियार हैं। आज पूरे विश्व में लगभग 20,500 परमाणु हथियार हैं। यदि हम यह मान लें

कि इन अस्त्रों की औसत क्षमता 33,500 किलोटन है तो पूरी पृथ्वी के भू-भाग को नष्ट करने के लिए यह पर्याप्त है।

हिंसा की ओर मनुष्य के झुकाव की यह भयानक अभिव्यक्ति है। यह केवल हथियारों से संबन्धित एक मुद्दा नहीं है। इस हिंसा की अभिव्यक्ति घरों, सड़कों और मीडिया में प्रत्येक दिन देखी जा सकती है। अंत में मैंने कहा कि परमाणु बम अप्रासंगिक, महत्वहीन तथा निष्प्रभावी तभी हो सकता है, जब हिंसा को मनुष्य के हृदय में स्थान न मिले।

कन्फ्यूसियस के कुछ अपने पसंदीदा पदों का यहाँ उल्लेख मैं अच्छा समझता हूँ जिनका मैं राष्ट्रपति रहते प्रायः प्रयोग करता था।

यदि हृदय न्याय-परायण हो तो चरित्र सुंदर होगा
यदि चरित्र सुंदर हो तो घर में सामंजस्य होगा
यदि घर में सामंजस्य हो तो राष्ट्र ठीक रहेंगे
यदि राष्ट्र ठीक रहे तो विश्व में शांति होगी

निश्चित रूप से यह एक स्पष्ट मार्गदर्शक है कि परमाणु बम किस प्रकार अप्रासंगिक, महत्व. हीन और निष्क्रिय होंगे। कन्फ्यूसियस ने परंतु इस पद में यह नहीं बताया है कि हृदय को कितना न्याय-परायण होना चाहिए।

आचार्य महाप्रज्ञ और मैंने माना कि नैतिक नींव या अंतश्चेतना की नींव घर से प्राप्त होती है एवं आपके अंतश्चेतना में आपके आचार-विचार तथा धर्म जन्म लेते हैं। हमारी पुस्तक 'The Family And The Nation' में आचार्य महाप्रज्ञ तथा मैंने स्वयं जागरूक होने की प्रक्रिया को चिन्हित किया है ताकि आप अपनी अंतश्चेतना से संपर्क कर सकें एवं 'आपकी अंतश्चेतना क्या कहती है', इस पर आप कार्य कर सकें।

एक साथ कार्य करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ तथा मैंने एक शक्तिशाली आध्यात्मिक साहचर्य उत्पन्न किया। शायद यह जैन मुनि रायचन्द भाई राव जी भाई मेहता तथा महात्मा गाँधी के साहचर्य के समान था। मेरी ही तरह आचार्य महाप्रज्ञ का विश्वास था कि आध्यात्मिक सिद्धांतों की अभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक दिन होनी चाहिए। तथा हम दोनों ने ही दुनिया-भर के मुद्दों में सम्मिलित होने का निर्णय लिया।

> "फरिश्ते अपने ज्ञान के कारण स्वतंत्र हैं तथा जानवर अज्ञानता के कारण, मनुष्य इन दोनों के (अस्तित्व के) बीच संघर्ष करता रहता है।"

आचार्य महाप्रज्ञ एवं मैंने 15 अक्तूबर, 2003 में सूरत में एक अंतरधार्मिक सभा के आयोजन में सहायता की। वहाँ भारत के सभी बड़े धर्मों के गुरु मिले तथा सर्वसामान्य सिद्धांतों पर चर्चा किया एवं अंतरधार्मिक सहयोग के उपायों पर बातचीत की। हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, जैन, इस्लाम,

सिख, यहूदी तथा पारसी धर्म के प्रतिनिधि तथा इन धर्मों के विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधि इस प्रथम तथा एक प्लैटफार्म वाले कार्यक्रम में पधारे।

इस कार्यक्रम के परिणाम उत्साहवर्धक रहे। कार्यक्रम में भाग लेने वाले ये 15 प्रतिनिधि चाहें देखने में तथा धर्म में विभिन्न रहे हों, किन्तु उनमें अधिकतर चीजें सामान्य थीं। सभी में वैश्विक आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता थी। दूसरे धर्म की वास्तविकता को मानने के लिए वे अपने धर्मों की शिक्षाओं से परे जाना चाहते थे। सामाजिक भलाई के लिए वे दूसरे धर्मों के अपने भारतीय बंधुओं तक पहुँचना चाहते थे।

राष्ट्रपति होने के नाते अंतरधार्मिक सामंजस्य को बढ़ावा देने में मैंने अपनी भूमिका महसूस की और यह मेरे लिए मुश्किल नहीं था क्योंकि मेरा लालन-पालन पंबन द्वीप के एक अंतरधार्मिक समाज में हुआ था। मैं ईसाईयों के चर्चों तथा हिन्दुओं के मंदिरों में प्रायः जाया करता था एवं धार्मिक स्थलों पर जाकर मुझे अच्छा लगता था। एक मुस्लिम राष्ट्रपति होने के नाते मेरी यह आदत मुझे एक अलग महत्व देती थी।

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के स्वर्णजयंती समारोह में भाग लेने के लिए मैं 20 नवम्बर 2003 को तिरुपति पहुँचा। दोपहर बाद मैं श्री वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर पहुँचा। यह मंदिर वेंकटादरी में तिरुमला पहाड़ियों की सातवीं चोटी पर है। वहाँ मेरा आदर मंदिर के पारंपरिक 'इस्ती कपाल' (Isti kapal) सम्मान से किया गया, जिसमें वहाँ के पारंपरिक संगीत तथा मंदिर के पुजारियों के वैदिक मंत्रों का मोहक उच्चारण सम्मिलित था।

बाद में मंदिर के गर्भ-गृह में मैं देवता के सामने खड़ा हुआ तथा अपनी श्रद्धा अर्पित की। मंदिर परिसर के भीतर ही स्थित 'रंगनयाकुला मंडपम्' (Ranganayakula Mandapam) में मुझे मंदिर के पुजारियों ने आशीर्वाद दिया, जिसे 'वेदाशीर्वचनम्' (Vedasirvachanam) कहा जाता है। वहाँ पुजारियों को बेहद आश्चर्य हुआ जब मैंने उनसे अपने देश और देशवासियों के लिए आशीर्वचनम् करने को कहा। मैं फर्श पर बैठा और केले की पत्ती से बने कटोरे में प्रसाद खाया। मैं उन पुजारियों की आँखों से आँसू बहते देख रहा था, जिन्होंने मुझे प्रसादमम् दिए थे।

> "केवल वो जो बहुत दूर जाने का जोखिम उठाएँगे, संभवतः
> वही जान पाएँगे कि वो कितनी दूर जाएँगे।"

आध्यात्मिक उत्थान के ऐसे अवसरों के साथ एक राष्ट्रपति तथा शस्त्र-बलों के सर्वोच्च कमांडर के रूप में मुझे महत्वपूर्ण सैन्य-कार्यक्रमों तथा परेडों में जाने का गौरव प्राप्त हुआ। भारतीय नौसेना का 'तीन मस्तूल वाला जलपोत'54 आई.एन.एस. तरंगिणी पूरे विश्व का ऐतिहासिक भ्रमण कर दक्षिणी नौसेना कमान के अड्डे पर 25 अप्रैल, 2004 को पहुँचा। कोच्चि के नौसेना-अड्डे के दक्षिणी घाट पर एक भव्य समारोह में मैंने जहाज एवं इसके चालक दल का स्वागत किया।

कोलंबस को 3,000 नॉटिकल मील को तय करने में 8 महीने लगे थे। आईएनएस तरंगिणी ने 18 देशों के 37 बंदरगाहों का 15 महीने में 34,454 नॉटिकल मील (65,661 किमी) का भ्रमण किया।

मैंने आईएनएस तरंगिणी द्वारा इस बड़ी दूरी को तय करने वाले नाविकों से कहा कि कोलंबस ने अपने मिशन के द्वारा सिर्फ एक नये महाद्वीप की खोज की, जबकि आप लोगों ने सभी महाद्वीपों की यात्रा की है। तथा उन महाद्वीपों के लोगों का दिल जीता है जिनका आपने भ्रमण किया है। समुद्र आपकी कक्षा थी तथा प्रकृति के तत्व आपके शिक्षक।

समुद्री भ्रमण में माहिर होना हमारे देश के लिए एक बड़ा सबक है। इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता चलता है कि मध्य-एशिया के राजाओं और योद्धाओं ने भारत के उत्तरी भागों पर थल-मार्ग से प्रवेश कर कई आक्रमण किए। इन आक्रमणों ने बहुत कष्ट दिया तथा हमारे समाज के ताने-बाने को बदल डाला। किन्तु इसके बाद के आक्रमण जो समुद्री रास्ते से हुए वो व्यापार से आरंभ हुए तथा विजय पर समाप्त हुए। इससे भारत को काफी अपमान सहना पड़ा।

पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तट से 1498 में प्रवेश किया तथा गोवा से इस महाद्वीप पर पैर जमाया। बाद में 16वीं शताब्दी के दौरान डेनमार्क और फ्रांस की फौज ने क्रमशः तरंग. मबादी तथा पॉण्डिचेरी में पैर जमाया। 17वीं शताब्दी के दौरान अँग्रेज समुद्री मार्ग से भारत में प्रवेश किए तथा व्यापार की एक कंपनी बनाई। उन्होंने अंततः पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों तथा डेनमार्क की फौज पर आधिपत्य जमा लिया एवं भारत पर 250 से भी अधिक वर्षों तक शासन किया। समुद्री-मार्ग की उपेक्षा करना ही, भारत पर अँग्रेजों द्वारा आधिपत्य जमाने का मुख्य कारण बना।

हमारी आधुनिक, सुसज्जित नौसेना इस बात को सुनिश्चित करती है कि हम इतिहास की उस भूल को फिर ना दोहराएँ। अतः हम सख्ती से समुद्री सुरक्षा को बरकरार रखने के लिए काम करते हैं।

मेरे राष्ट्रपति काल के दौरान भारत परिवहन के दूसरे तरीके से अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करना आरंभ कर रहा था। अँग्रेजों के आने से पूर्व भारत अपनी सड़कों तथा व्यापार-नेटवर्क में सबसे ऊपर था। और इसके कारण यह उपमहाद्वीप पूरी दुनिया की आमदनी का लगभग एक-चौथाई भाग प्राप्त करता था।

तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मौर्य शासकों ने तक्षशिला तथा पटलिपुत्र (पटना) को 2,600 किलोमीटर लंबी सड़क से जोड़ दिया। इस सड़क का 8 चरणों में निर्माण किया गया था। आम युग की पहली शताब्दी तक भारत पूरे विश्व की आमदनी का एक-तिहाई भाग प्राप्त करता था। तथा यह बहुत अच्छी तरह से निर्मित सड़कों की जाल पर अत्यधिक रूप से निर्भर करता था।

1540 से 1545 के दौरान अपने छोटे से शासनकाल में शेरशाह सूरी ने गंगा के मैदानी क्षेत्र के साथ निर्मित मौर्य शासनकाल के सड़क की मरम्मत करवाई। पश्चिम में इसे काबुल तक तथा पूरब में चिटगाँव तक बढ़ा दिया। अँग्रेजो ने इस सड़क में और सुधार लाया तथा इसका नाम जी.टी. रोड (ग्रैंड ट्रंक रोड) रखा।

अँग्रेजो के शासनकाल के दौरान भारत में परिवहन के बुनियादी ढाँचे में काफी विस्तार हुआ। सन् 1920 तक भारत का रेल नेटवर्क पूरी दुनिया का सबसे बड़ा चौथा नेटवर्क था। पक्की-समतल (Macadamized) सड़कें गाँव-गाँव तक पहुँच गईं। ये आधुनिक सड़कें तथा रेल-लाइनें अंग्रेजों के

व्यापार के लाभ के लिए बनाई गयीं, जिनमें भारतीय करदाताओं का पैसा लगा था। परंतु इसे नकारा नहीं जा सकता कि इन सड़कों तथा रेल-लाइनों से आधुनिक भारत के निर्माण में बहुत सहायता मिली। स्वतन्त्रता के समय भारत ढाई शताब्दियों के औपनिवेशिक शोषण की मार झेलता रहा था। पूरे विश्व की आमदनी का यह चार फीसदी से भी कम प्राप्त करता था। फिर देश के नेताओं ने समाजवादी नीतियों को अपनाया, जिसमें केन्द्रीय योजनाओं तथा राज्य-आश्रित उपक्रमों को बढ़ावा मिला। किन्तु व्यापार और सड़कें उपेक्षित रहीं। स्वतन्त्रता के पश्चात् शुरू के पचास वर्षों में चार-लाइन वाले राजमार्गों के 500 किलोमीटर भी नहीं बन पाए।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने इस स्थिति को बिलकुल ही बदल डाला। अक्तूबर 1999 में जब उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय का भार सँभाला तो उनके सबसे पहली घोषणाओं में एक 6,000 किलोमीटर राजमार्ग के निर्माण की योजना थी, जिसे स्वर्णिम चतुर्भुज (Golden Quadrilateral) का नाम दिया गया। इस योजना में भारत के प्रमुख औद्योगिक, सांस्कृतिक तथा कृषि-संबंधी आधे से अधिक मुख्य केन्द्रों को जोड़ना एवं देश के चार महानगरों दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई तथा मुंबई को बड़े तथा आधुनिक राजमार्गों से जोड़ना था। अगले पाँच वर्षों में राष्ट्रीय राजमार्ग के लगभग 25,000 किलोमीटर का निर्माण हुआ जो देश की समृद्धि में एक बड़ा प्रोत्साहन-भरा कदम था। मैंने इसे आधुनिक युग में अपने विशाल देश की अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने का संभवतः प्रथम सत्यनिष्ठ प्रयास माना।

> "कोई नेतृत्वकर्ता श्रेष्ठ तब माना जाता है जब लोग शायद ही जानें कि वह (उसका अस्तित्व) है, जब उसका कार्य पूर्ण हो जाता है, उसके उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है, तो लोग कहें- यह तो हमने स्वयं किया है।"

राजनेता आते और जाते हैं, केवल देश को तथा उसकी जनता को सब सहन करना पड़ता है। 22 मई, 2004 को राष्ट्रपति भवन के अशोक हॉल में मैंने डॉ॰ मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री के कार्यालय तथा इसकी गोपनीयता की शपथ दिलाई थी। आधुनिक भारत के इतिहास में कोई भी प्रधानमंत्री ऐसा नहीं था, जिनके अनुभव डॉ॰ मनमोहन सिंह की तरह हों। एक राजनीतिज्ञ के रूप में राज्य सभा में उन्हें 'नेता-प्रतिपक्ष' तथा 1990 में वित्त मंत्री का अनुभव प्राप्त था। एक टेक्नोक्रेट के रूप में सरकार में शायद ही कोई पद ऐसा हो जिसे मनमोहन सिंह ने सुशोभित न किया हो। डॉ॰ सिंह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री के सलाहकार, भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर, योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा मुख्य आर्थिक सलाहकार रह चुके हैं। सरकार में भारतीय तंत्र की सर्वोत्तम परंपरा में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ मेरा एक मधुर संबंध रहा।

नयी शताब्दी में भारत अपनी पहुँच को विस्तृत कर रहा था, सुदृढ़ अंतरराष्ट्रीय संबंध बना रहा था। 16 सितम्बर, 2004 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की यूपीए सरकार के चुनाव के कुछ महीनों बाद ही मैं पैन-अफ्रीकी संसद के उद्घाटन सत्र में सम्मिलित हुआ। वहाँ मैंने एक उपग्रह

और फाइबर ऑप्टिक नेटवर्क के द्वारा अफ्रीकन यूनियन के सभी 53 देशों को जोड़ने के लिए भारत की सहायता की घोषणा की। ताकि उपग्रह टेलीएजुकेशन, टेलीमेडिसीन, इंटरनेट तथा विडियो–कॉन्फ्रेंसिंग (विशेषतः कूटनीतिक बातचीत, V-V-I-P-) तथा VoIP (वॉयस ओवर इंटरनेट प्रोटोका. ॅल) सेवाओं में सहायता करे। यह नेटवर्क ई–गवर्नेंस, ई–कॉमर्स, ज्ञान तथा मनोरंजन, संसाधनों को दर्शाने तथा मौसम संबन्धित सेवाओं में सहायता करता। भारत ने 150 मिलियन डॉलर के अनुमानित बजट के साथ उक्त परियोजना के लिए फंड की पेशकश की तथा डॉक्टरों और नर्सों में शिक्षा द्वारा क्षमता निर्माण की जिम्मेदारी ली।

एक प्रकार से यह परामर्श देने की एक क्रिया थी, जिसे स्पेसफेयरिंग राष्ट्रों (Spacefaring Nations– तत्कालीन सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका) ने 60 के दशक की शुरुआत में भारत के साथ संवर्धित किया था। भारत अब एक टेक्नोलॉजी की ताकत के रूप में अपना स्थान बना रहा था तथा दूसरे देशों की प्रगति के लिए काम कर रहा था, जैसाकि दूसरे देशों ने दशकों पहले भारत के लिए किया था।

जब मैं अफ्रीका में था तो मुझे मेरे नायकों में से एक तथा 20वीं शताब्दी के महान अफ्रीकी राजनीतिज्ञ नेल्सन मंडेला से मिलने का अवसर मिला था। जब मैं जोहान्सबर्ग में उनके घर पर उनसे मिला था तो श्री मंडेला मुझे सबसे अधिक प्रसन्न तथा व्यस्त व्यक्ति लगे। मैं ऐसे दुर्बल किन्तु महान शख्सियत से मुखातिब होकर काफी रोमांचित था, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका को रंगभेद की नीति के जुल्म व अत्याचार से मुक्ति दिलाई थी। ऐसा लगता था कि नेल्सन मंडेला का कोई अपना नायक था– और वह कोई दूसरा नहीं बल्कि हमारे अपने गाँधी जी थे। महात्मा गाँधी की अहिंसा से मंडेला बहुत प्रभावित थे। रंगभेद की नीति से लोकतन्त्र में परिवर्तन हेतु 90 के दशक के शुरुआत में गाँधी जी की अहिंसा–नीति ने श्री मंडेला की मुहिम का बहुत उत्साह बढ़ाया।

उनसे मिलने के बाद जब मैं उनके घर से चला तो श्री मंडेला मुझे विदा करने के लिए बरामदे तक आए। जैसे ही उन्होंने चलना आरंभ किया, उन्होंने अपनी छड़ी छोड़ दी और मैं उनका सहारा बन गया। जब मैंने उनका हाथ पकड़ा तो मैंने इस महान व्यक्ति से दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद नीति के विरोध में लड़ने वाले नेताओं के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, "निश्चित तौर पर दक्षिण अफ्रीका के स्वतन्त्रता संग्राम के महान नेताओं में एक मोहनदास करमचंद गाँधी थे। भारत ने हमारे लिए एक न्याय–परायण वकील एम.के. गाँधी के रूप में भेजा था। हम लोगों ने उन्हें महात्मा गाँधी के रूप में आप लोगों को लौटाया है।"

नेल्सन मंडेला से मिलने के बाद मैं डरबन गया और वहाँ से फिर 105 किलोमीटर दूर पीटरमैरिट्जबर्ग (Pietermaritzburg) गया। दक्षिण अफ्रीका के इस ग्रामीण कस्बे में ही गाँधी जी को 'महात्मा' की उपाधि मिली थी। युवा वकील मोहनदास करमचंद गाँधी पीटरमैरिट्जबर्ग के रेलवे स्टेशन पर ही 7 जून,1893 की जाड़े की रात में काँप रहे थे। गाँधी जी को उनके सामान के साथ ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया था, सिर्फ इसलिए कि उन्होंने फर्स्ट क्लास केबिन को छोड़ने से मना कर दिया था। रेलवे अधिकारी ने उनसे कहा कि "कुली और अश्वेत लोग प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा नहीं कर सकते, भले ही उनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट हो।" इस अपमान ने इतिहास के संभवतः सबसे बड़े स्वतन्त्रता सेनानी के हृदय में आग भड़का दी थी।

गाँधी जी ने पीटरमैरिट्जबर्ग में बिताए उन चंद अंधकारमय घंटों में अपनी स्थिति तथा देशवासियों की दुर्दशा पर गहन चिंतन किया। इस घटना का घोर अन्याय गाँधी जी के जीवन का एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। उन्होंने उसी समय दक्षिण अफ्रीका में रुकने तथा दबे-कुचले भारतीय अप्रवासियों के अधिकारों के लिए लड़ने का संकल्प लिया। 9 जनवरी,1915 को जब वह भारत लौटे तो एक अनुभवी स्वतन्त्रता सेनानी थे, जो 'महात्मा' के रूप में अपने देश को आजादी दिलाने के लिए नेतृत्व हेतु तैयार थे।

जब मैंने 19वीं शताब्दी के भाप इंजन वाली ट्रेन में गाँधी जी की यात्रा की याद ताजा करने के लिए पेंट्रिच (Pentrich) स्टेशन से पीटरमैरिट्जबर्ग की यात्रा की, तो मुझे लगा कि सबके जीवन में एक मोड़ ऐसा आता है जो उसकी जिन्दगी को बदलकर रख देता है। आपके जीवन में एक ऐसी ही घटना घटेगी जैसाकि गाँधी जी के साथ घटी। जहाँ आप प्रयास करने के लिए प्रेरित होंगे या विपरीत परिस्थितियों से संचालित बड़ी उपलब्धियों तथा आदर्शों के लिए प्रेरित होंगे। उस समय यह घटना अप्रिय लग सकती है जैसाकि गाँधी जी पीटरमैरिट्जबर्ग में ठंड से काँप रहे थे, किन्तु पुनरावलोकन के बाद यह वरदान साबित होगी, जैसाकि मेरे साथ हुआ। मैं देहारादून में एयरफोर्स के पायलट की योग्यता परीक्षा में विफल हो गया था।

वह जो सुरक्षित रखते हैं, उन्हें इसका पुरस्कार मिलता है एवं वह अपने भाग्य को बिलकुल ही बदला हुआ देख सकते हैं। गाँधी जी को भारत की आजादी के शांतिपूर्ण अभियान के लिए अंततः अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली। उन्हें मरणोपरांत अप्रैल 1997 में पीटरमैरिट्जबर्ग में 'फ्रीडम ऑफ द सिटी' पुरस्कार दिया गया। तथा अब उस शहर में महात्मा गाँधी की एक मूर्ति भी लगी हुई है।

यदि मैं अपनी बात करूँ तो मुझे अपनी उन महत्वाकांक्षाओं को पुनः प्रज्ज्वलित करने का अवसर प्राप्त हुआ, जो लगभग आधी शताब्दी पहले शांत हो गयी थीं। 8 जून, 2006 को पूना में लोहेगाँव वायुसेना के अड्डे पर एक सुखोई-30-एमके1 लड़ाकू विमान उड़ाया। मैंने इसे लोहेगाँव में बसे लाइटनिंग स्क्वैड्रन के कमांडिंग ऑफिसर, विंग कमांडर अजय राठौड़ के साथ उड़ाया। हम लोगों ने इस विमान को 25,000 फीट (7.5 किलोमीटर) की ऊँचाई पर उड़ाया तथा इसकी गति 1.25 मैच (ध्वनि की गति के सवा गुना) तक पहुँचा दी। इस प्रकार मैंने अपने बचपन के सपने को साकार कर लिया। मैं जब भी नौजवानों से मिलता हूँ, मैं उनसे यही कहता हूँ कि आप अपने सपने को साकार करने की इच्छा को कभी न छोड़ें-

> "सपने देखें, और देखते रहें
> सपने विचारों में बदलते हैं
> तथा विचार क्रिया में"

"त्रुटियों की वकालत ही विवादों को भयभीत बनाती है।"

राष्ट्रपति पद के मेरे कार्यकाल में कई यादगार अवसर आए जैसे– नेल्सन मंडेला के साथ मेरी मुलाकात, गाँधी जी के कार्यों की फिर से खोज तथा लड़ाकू विमान का उड़ाना। लेकिन इसमें कुछ विवाद भी रहे और इन विवादों ने मुझे अपने–अपने सबक भी सिखाए।

संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत मैंने जो घोषणा की थी वह एक असफलता थी। इसने पूरे देश में राजनीतिक हलचल मचा दी थी। तथा इसके केन्द्रीय सरकार के द्वारा इस अनुच्छेद के प्रयोग पर सवाल भी किए गये। 23 मई, 2005 को मास्को से जारी किए गये इस घोषणा ने 'बिहार विधान सभा' को भंग कर दिया। मैंने बिहार के गवर्नर बूटा सिंह की सलाह के पश्चात् ही उस पर हस्ताक्षर किए थे। गवर्नर बूटा सिंह की सलाह को केन्द्रीय मंत्रिमंडल का समर्थन प्राप्त था। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इस मुद्दे पर मुझसे विस्तृत रूप से बात की थी।

इस घोषणा के विरुद्ध 24 जनवरी, 2006 का सुप्रीम कोर्ट का फैसला एक धक्का–जैसा था। फैसले ने विगत वर्ष राज्य विधानसभा को भंग करने की बिहार गवर्नर की सिफारिश की आलोचना की, तथा कहा कि मेरी (राष्ट्रपति की) घोषणा असंवैधानिक थी।

गणतन्त्र दिवस के समारोह में गर्व से सम्मिलित होने के दो दिन बाद मैं अलग–थलग–सा महसूस करने लगा। जबकि अदालत ने सीधे तौर पर मेरी आलोचना नहीं की थी, क्योंकि मैंने मंत्रिमंडल की सलाह पर कार्यवाही की थी। फिर भी मुझे लगा कि मैंने समझौता किया है। मैंने राष्ट्रपति के पद से इस्तीफा देने का विचार किया। अतः इस विषय पर मैंने अपने तमाम मित्रों तथा राष्ट्रपति भवन के सभी वरिष्ठ अधिकारियों से बात की। मेरी कार्यवाही पर प्रश्न उठाने तथा उस पर सोच–विचार के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि परिस्थितियों के अनुसार मैंने सही किया। संविधान के अनुसार मैं मंत्रिमंडल की सलाह को मानने के लिए मजबूर था। इसके अलावा दूसरा फैसला केन्द्रीय सरकार के अधिकारों को कमजोर करता। परिणाम जो भी हो किन्तु मैंने नैतिकता के आधार पर काम किया था।

इस घटना से संभवतः मेरे अहंकार को ठेस पहुँची थी। यह अहंकार ही है जो किसी के अस्तित्व तथा अभिराम पर केन्द्रित होता है और जब कोई इसमें गलत साबित होता है तो उसे दुख होता है। अहंकार भी दूसरों की हद को छोड़कर स्वार्थी तौर पर महत्वाकांक्षी होता है। अहंकार को अंतरात्मा की आवाज (अंतश्चेतना) द्वारा ऊपर उठाया जा सकता है। यह अधिक–से–अधिक अच्छी चीजों को अपने घेरे में ले लेता है। अंतरात्मा की आवाज जीवन को सेवा तथा योगदान के अनुसार देखती है। अंतश्चेतना में धीरज होता है और बुद्धिमत्ता इसको रास्ता दिखाती है। इसमें अनुकूलन की क्षमता होती है। अपने प्रारंभिक जीवन में मैंने अंतश्चेतना से राह देखने को चुना था और मेरी अंतश्चेतना हमेशा मुझे रास्ता दिखाती रहेगी, जब मैं राष्ट्रपति था तब भी, और उसके बाद भी।

> "मैं लोगों में दृढ़ विश्वास रखने वाला हूँ, यदि उन्हें सच बताया जाए तो किसी भी राष्ट्रीय संकट से निपटने में उन पर निर्भर रहा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन तक वास्तविक तथ्यों को पहुँचाया जाए।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के 88वें दीक्षांत समारोह के लिए मुझे निमंत्रण मिला था। काशी और मेरे गृह नगर रामेश्वरम् के बीच एक सुंदर आध्यात्मिक संबंध है। काशी की तीर्थयात्रा के पश्चात् तीर्थयात्री रामेश्वरम् जाते हैं। जो आध्यात्मिक यात्रा को पूर्ण बनाने का एक साधन है। मैंने 1991 में काशी के अपने पूर्व दौरे को याद किया जब मैं बी.एच.यू. के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (I.I.T.) के दीक्षांत समारोह को संबोधित करने गया था। उस दीक्षांत समारोह में दर्शकों से मेरा परिचय काशी के महाराजा तथा विश्वविद्यालय के कुलाधिपति काशी नरेश श्री विभूति नारायण सिंह ने करवाया था। उन्होंने मेरे बारे में कहा कि 'मैं काशी में गंगा की भूमि पर रामेश्वरम् अग्नि तीरथम् से आया हूँ। प्रबुद्ध नागरिकों के बारे में अपने विचार को मुखर करने में मैंने इस अवसर का प्रयोग किया।

जाँच, रचनात्मकता, प्रौद्योगिकी, उद्यमशीलता की मानसिकता और नैतिक नेतृत्व वो पाँच गुण हैं जिनको शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में सीखने की आवश्यकता होती है। यदि हम इन पाँचों गुणों को अपने विद्यार्थियों में विकसित करते हैं तो हम स्वायत्त शिक्षार्थी उत्पन्न करेंगे। ये वो लोग हैं जो आत्मनिर्देशित, आत्मनियंत्रित, आजीवन शिक्षार्थी रहने वाले होते हैं। तथा जो प्राधिकरण के आदर की क्षमता रखते हैं, साथ ही उचित तरीके से प्राधिकारणों से सवाल करने की भी क्षमता रखते हैं।

लगभग सभी नौजवान स्वायत्त शिक्षार्थी, नौजवान प्रबुद्ध नागरिक बनते हैं, कुछ प्रोत्साहन से और कुछ संगठित तरीके से। इस प्रकार के लोगों को देश में उत्पन्न करने की जरूरत है। जैसे-जैसे मेरा राष्ट्रपति कार्यकाल बढ़ता जा रहा रहा था मैं तेजी से आश्वस्त होता जा रहा था कि 'भारत को पुनर्जागरण की सख्त जरूरत है।' मुझे यकीन था कि यह सिर्फ मुल्क के नौजवानों के सहयोग से ही संभव हो सकता है।

१०

विश्व एक मंच है

"कुरुक्षेत्र आपके भीतर ही है। आपके भीतर लड़ाई उग्र रूप धारण किए हुए है। अज्ञानता धृतराष्ट्र है, आपकी आत्मा अर्जुन है। आपके हृदय के भीतर रहने वाला सारथी कृष्ण है, शरीर रथ है, इंद्रियाँ ५ घोड़े हैं, अहंकार, तृष्णा, पसंद व नापसंद, वासना, ईर्ष्या, लालच, गर्व तथा पाखंड और दूसरे मानसिक कलंकों को आश्रय देने वाले सौ कौरव हैं"

"जनवरी 2007 में गणतन्त्र दिवस की पूर्व संध्या पर अपने संबोधन में मैंने एक बड़ा प्रश्न किया था, "मैं क्या दे सकता हूँ?" यह एक अन्य राष्ट्रपति के प्रश्न के ही समान था और वो थे– अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी, जिन्होंने 46 वर्ष पूर्व राष्ट्र से अपने पहले सम्बोधन में पूछा था। कैनेडी ने जनता से कहा था कि "आप यह न पूछें कि आपका देश आपके लिए क्या कर सकता है, बल्कि यह पूछें कि अपने देश के लिए आप क्या कर सकते हैं !"

यह तथा इसी प्रकार के अन्य प्रश्न आज भी वैसे ही प्रासंगिक हैं जैसाकि ये प्रारम्भिक दशकों में थे। लगभग हर एक व्यक्ति सिस्टम से सिर्फ लेने के ही बारे में सोचता है, अपने पास–पड़ोस के लोगों से छीनने के बारे में सोचता है और बस अपने ही हित के बारे में सोचता है, ये सोचे बिना कि इसका परिणाम क्या होगा! मैंने इन सभी सामाजिक बुराइयों की जड़ की पहचान 'मैं क्या ले सकता हूँ', के पागलपन के रूप में की थी। इस बुराई का इलाज निश्चित तौर पर 'मैं क्या दे सकता हूँ', के आत्म–निरीक्षण में है।

जैसे–जैसे मेरे राष्ट्रपति कार्यकाल का समय समाप्त होता जा रहा था, मैंने महसूस किया कि मुझे भारतीय लोगों के विशाल तथा वस्तुतः अप्रयुक्त शक्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रगतिशील भारत करोड़ों लोगों का मिशन है जिसमें सबको अपनी भूमिका निभानी है। यह तभी

वास्तविकता का रूप धारण करेगा जब हर व्यक्ति राष्ट्रव्यापी आंदोलन में व्यक्तिगत तथा सामूहिक भागीदारी निभाए। देश की जनता विशेष रूप से नौजवानों से अपनी बातचीत के दौरान मुझे ज्ञात हुआ कि वे लगभग असीमित सकारात्मक ऊर्जा के मालिक हैं। भारतवासी, भारत को विकसित देश बनाने के लिए वह सब देने को उत्सुक हैं, जो वो दे सकते हैं। यह जरूरी है कि युवा वर्ग की ऊर्जा को प्रोत्साहित किया जाए, इसे आसान बनाया जाए और सरकार द्वारा इसका इस्तेमाल अच्छी तरह किया जाए, यह हमारे नागरिकों के लिए आवश्यक है कि वे देश की प्रगति में सक्रिय रूप से भाग लें।

> "यदि किसी मणि या किसी फूल की जगह, हम किसी मित्र के हृदय में किसी अच्छी सोच को पहुँचा सकें तो यह उस प्रकार का कार्य होगा जैसा कार्य कोई फरिश्ता करता है।"

गणतन्त्र दिवस के पूर्व संध्या पर मेरे अंतिम सम्बोधन के कुछ महीने बाद मुझे मेरे कार्यकाल के सबसे प्रमुख अंतरराष्ट्रीय दर्शकों के सामने भाषण देना था। यह पहली बार होने वाला था कि कोई भारतीय राष्ट्रपति यूरोपीय संसद को संबोधित करता। 24 अप्रैल, 2007 को मैं फ्रांस के स्ट्रास्बोर्ग पहुँचा। संसद की मुख्य इमारत आधुनिक दिखाई पड़ती है। इसकी संरचना मेहराबदार (घुमावदार) है, जिसमें अधिक भाग में काँच लगे हुए हैं। उस दिन सूरज चमक रहा था और इमारत ईल नदी के पानी में खूबसूरती से प्रतिबिम्बित हो रही थी।

यूरोपीय संसद का हॉल, जो भारतीय संसद के सेंट्रल हॉल से बहुत बड़ा है, लोगों से भरा हुआ था। यूरोपीय अध्यक्ष हांस–गर्ट पोटरिंग के संक्षिप्त परिचय के बाद मैंने संगम युग के एक तमिल उद्धरण से अपनी बात शुरू की। तमिल उद्धरण बताता है कि 'विश्व एक बड़ा परिवार है'। मैंने कहा कि मानव इतिहास में यूरोपीय सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थान है। यूरोप के लोग पृथ्वी की खोज में बहादुरी से लगे हुए थे, जिसके कारण बहुत–सारे विचारों और प्रणालियों की खोज हो पायी।

मैंने यूरोपीय इतिहास के kharaab खराब पहलुओं पर बात नहीं की। 45 मिनट के अपने भाषण में मैंने यूरोपीय संघ के बारे में अपनी कविता, 'भारत की ओर से एक संदेश' पढ़ी। मेरी कविता ने यूरोप की धन्य भूमि और वहाँ के रहने लोगों के साहित्यिक, रचनात्मक और व्यवस्थित भावना को श्रद्धा अर्पित की। तब इसमें यूरोप के मनहूस अतीत अर्थात यहूदियों के उत्पीड़न, महाद्वीपों और महासागरों के सभी देशों के विरुद्ध औपनिवेशिक युद्धों तथा दो विश्व युद्धों का उल्लेख था जिसमें सम्मिलित देशों के अकल्पनीय रक्तपात तथा कष्ट से दो–चार होना पड़ा। मन के सबसे अच्छे और काम के सबसे बुरे इन दो छोरों की स्थापना के बाद मैंने यूरोपीय संघ को मानव संभावनाओं का बीच का रास्ता करार दिया।

जब मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार कहते हुए अपना भाषण समाप्त किया तो वहाँ उपस्थित 700 सांसदों ने खड़े होकर मेरा अभिवादन किया। यूरोपीय संसद के अध्यक्ष हान्स गर्ट पोटरिंग ने यूरोपीय संसद में मेरे भाषण को असाधारण बताया जिसे वो इससे पहले कभी नहीं सुने थे।

"वह जो इतना ऊपर जाना चाहते हैं जितना कि मानवीय स्थिति अनुमति देती है, उनके लिए बौद्धिक गौरव छोड़ना आवश्यक है।"

कभी–कभी हम लोग भूल जाते हैं कि पूरे इतिहास में यूरोप के साथ हमारा संबंध कितना गहरा रहा है। मैं 25 Aprail अप्रैल 2007 को यूनान चीनदर्बी पहुँचा। यूनानी राष्ट्रपति कारोलोस पापुलियास ने मुझे राजा मिलिंडा की तस्वीर वाला एक सिक्का दिखाकर आश्चर्य चकित कर दिया। यह सिक्का भारत तथा यूनान की प्राचीन सभ्यताओं के बीच शक्तिशाली संबंध की गवाही है।

भारतीय राजा पोरस और मेसेडोनिया के यूनानी राजा सिकंदर महान की 326 ईसा पूर्व की लड़ाई को भारत का बच्चा–बच्चा जानता है। सिकंदर ने फारसी साम्राज्य को कब्जे में कर लिया और फिर झेलम पहुँचा जो पोरस के राज्य की पश्चिमी सीमा थी और जो पूरब में गंगा तक फैली हुई थी। लड़ाई में पोरस की सेना की वीरता ने सिकंदर की सेना के साहस को तोड़ डाला और उन्होंने भारतीय भूमि में और दाखिल होने से मना कर दिया।

सिकंदर यूनानी सेना को छोड़कर लौट गये। यूनानी सेना ने तक्षशिला में अपने आप को स्थापित किया। 30 से भी अधिक यूनानी राजाओं ने वहाँ शासन किया और उस क्षेत्र को तबाह–व–बर्बाद किया। वे आपस में ही लड़ते रहे जब तक कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने राजा सेल्यूकस को पराजित नहीं कर दिया तथा एक शांति–संधि हस्ताक्षर नहीं किए। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस की बेटी से शादी कर लिया जिसके बाद भारतीय राज–परिवारों में विवाह एक चलन बन गया। यूनान की सेना ने नन्द वंश के तख्ता–पलट में चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता भी की थी।

बहुत सारे भारतीय–यूनानी राजाओं ने पश्चिम में हिंदुकुश से लेकर पूरब में गंगा और यमुना के मैदानी इलाकों में तथा दक्षिण में विंध्य की पहाड़ियों तक राज किया। इनमें से अधिकतर राज्य बौद्ध धर्म को मानते थे। समय बीतने के साथ–साथ यूनान की आबादी भारत की विशाल और समृद्ध समाज में मिलती गयी और वो भारतीय बनते गए। यह एक सौम्य भाग्य था जो सदियों से आक्रमणकारियों का इंतजार कर रहा था।

राजवंशों का उदय होता है और पतन होता है, राजा राज करते हैं फिर उनका राज समाप्त हो जाता है एवं राष्ट्रपति पाँच वर्षों के कार्यकाल का आनंद उठाते हैं और सेवानिवृत्त हो जाते हैं। कार्यालय या सत्ता की चकाचौंध में निमग्न हो जाना संलग्न हो जाना सचमुच एक बहुत बड़ी भूल है। वे जीवन से कहीं अधिक क्षणभंगुर होते हैं। इन सब बातों को जानकर मैं राष्ट्रपति पद के अपने पूरे कार्यकाल में व्यावहारिक रहा। जैसाकि डॉ. ब्रह्म प्रकाश ने दशकों पहले मुझे बताया था, "मैं अपने पद और स्थान से हमेशा अवगत रहा। मेरे कार्यकाल के समाप्त होने के कुछ महीने पहले सारी परिस्थितियों के बीच मेरे स्थान के बारे में एक रहस्योद्घाटन के बारे में मुझे पता चला। यह मुझे तब पता चला जब मैं अपने एक मित्र के साथ राष्ट्रपति भवन के गौरवशाली मुगल गार्डेन में टहल रहा था।

गार्डेन में पत्थर से बने रास्तों में टहलते हुए हम दोनों मेरे कार्यकाल के बाद मेरे विक. ल्पों पर बात कर रहे थे। विविध रंगों के फूल अपनी छटा बिखेर रहे थे तथा इसकी हरियाली दिल्ली में वसंत ऋतु के सुगंध की गवाही दे रही थी। टहलने के दौरान एक मोटी–तगड़ी सफेद बिल्ली हमारे सामने से गुजरी, यह जाने बिना कि हम लोग वहाँ उपस्थित थे। वह धीरे–धीरे और उद्देश्यपूर्ण तरीके से चली जा रही थी, मानो गार्डेन की वह मालकिन हो। मुझे हँसी आ गयी। तब मैंने राष्ट्रपति भवन में अपने वजूद को एक बिलकुल ही अलग परिप्रेक्ष्य में देखा। मैंने अपने मित्र से कहा, "वह बिल्ली मुझ–जैसे लोगों की बनिबस्त (जो केवल 5 वर्षों में आते –जाते हैं) जुलाई के बाद भी यहीं पर होगी। बिल्ली, कुत्ते, हिरण और मोर राष्ट्रपति भवन के स्थायी निवासी हैं।"

राष्ट्रपति पद के लिए सरकार ने किसी अपने प्रत्याशी को नामजद करने का निश्चय कर लिया था, किन्तु मुझे ही दुबारा राष्ट्रपति भवन में बरकरार रखने के लिए कुछ क्षेत्रीय पार्टियों की ओर से जोरदार प्रयास हुए। जयललिता के नेतृत्व वाली एआईएडीएमके, मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी, चन्द्र बाबू नायडू की डीटीपी, और ओमप्रकाश चौटाला की इंडियन नेशनल लोकदल (आईएनएलडी) मिलकर यूनाइटेड नेशनल प्रोग्रेसिव अलायन्स (यूएनपीए) बनाया। यूएनपीए का एक प्रतिनिधि–मंडल 20 जून, 2007 को मेरे पास आया तथा राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़ा होने के लिए मुझसे आग्रह किया। राष्ट्रपति पद के दूसरे कार्यकाल के लिए मुझे हजारों ई–मेल मिले और मैं भी राष्ट्रपति भवन में अपने दूसरे कार्यकाल के लिए मिल रहे भारी जन–समर्थन से अवगत था। मैंने महसूस किया कि राष्ट्रपति भवन जो मेरे कार्यकाल में जनता का भवन बन चुका था, चुनाव–प्रचार से इसकी महत्ता घटेगी।

मुझे मालूम था कि राजनीति छोड़ने का मेरा समय आ चुका है। मैंने इस पर बात करने के लिए पहले ही अपने आध्यात्मिक गुरु और गाइड प्रमुख स्वामी जी को फोन कर लिया था। उस समय वह अमेरिका में थे, उन्होंने कहा, "कलाम साहब, चुनाव के लिए आप दुबारा खड़े न हों, अब आप जनता की सेवा करें। निस्वार्थ सेवा करके कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्यालय से ऊपर उठ सकता है, चाहें वह कार्यालय कितना ही ऊपर क्यों न हो!" प्रमुख जी का मशविरा मेरे कानों में गूँजता रहा लिहाजा 22 जून, 2007 को मैंने राष्ट्रपति पद के दूसरे कार्यकाल के लिए चुनाव न लड़ने का फैसला सबको सुना दिया।

सांसदों ने 23 जुलाई, 2007 को संसद के केन्द्रीय हॉल में मेरे लिए विदाई–भोज का आयोजन किया। मैंने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह तथा उनके पूर्ववर्ती अटल बिहारी वाजपेयी जी का शुक्रिया अदा किया, जिनके साथ मैंने 5 वर्ष के अपने कार्यकाल में काम किया था। मैंने उपराष्ट्रपति भैरो सिंह शेखावत को भी उनके समर्थन हेतु धन्यवाद कहा। मैंने तब कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण बातों को रखने के लिए इस अवसर का प्रयोग किया।

पहली बात जो मैंने अर्ज किया वो यह थी कि एक आम धारणा बानी हुई है और एक प्रशंसा सुनने को मिलती है कि भारतीय–शासन–प्रणाली के बाहर तथा अन्दर का माहौल तीव्र तथा जाहिरी तौर पर अपरिवर्तनीय बदलाव से गुजरा है। इन बदलावों से राष्ट्रीय संप्रभुता, अखंडता तथा आर्थिक विकास के सामने आई चुनौतियों को मिलकर और फौरी तौर पर हल करने की जरूरत

है। हमारे सामाजिक संगठनों में खराबी आने का रुझान होता है और उनमें संकट जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। एक सामाजिक इकाई के रूप में लगता है कि भारतीय शासन–प्रणाली संकट की स्थिति में आ गयी है। स्वयं–नवीकरण और बदलाव के लिए यह एक बिगुल था।

दूसरी बात जो मैंने कही वो यह थी कि– वैश्वीकरण से भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हुई है। देश पहले से अधिक धनी है किन्तु संसद की शक्ति में वृद्धि के लिए बड़ी सतर्कता की जरूरत है। अंतरराष्ट्रीय संधियाँ इन दिनों आर्थिक निर्णय को काफी प्रभावित करती हैं एवं विश्व में दूसरे कुछ ससदों की तरह भारतीय संसद के पास भी प्रभावी संधि निरीक्षण की कोई प्रणाली नहीं है। कुल मिलाकर संधियाँ जब तक संसद में आती हैं, उन पर बातचीत संपन्न हो जाती है। अतः दूसरे देशों के साथ संधियों तथा समझौताओं की निगरानी के लिए एवं इस पर कानून बनाने के लिए शक्ति की तत्काल आवश्यकता है।

मैंने कहा कि "पूरी दुनिया में भविष्य के लिए राजनीतिक नेतृत्व विकास की निरंतरता, प्रगति, वातावरण, और संसाधनों की चुनौतियों से निबटने वाला होना चाहिए। राष्ट्रीय–नेतृत्व को जनता को यह विश्वास दिलाना होगा कि हम लोग इसे कर सकते हैं। सांसदों से अपने सलाहों पर विचार–विमर्श की अपील करते हुए मैंने कहा कि– उन्हें हमारे देश के संविधान की रचना की तरह 'देश के लिए एक संसदीय कल्पना' की रचना करनी चाहिए।''

भारत के लिए 21वीं सदी के इस संसदीय कल्पना में वैश्विक एवं लंबी अवधि के परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है। इसमें भारत को विकसित देश में बदलने के लिए कार्यान्वयन कीरणनीति, एकीकृत संरचना तथा कार्य योजना की भी जरूरत है। इसके लिए दो कसौटियाँ होनी चाहिए, पहला– श्राष्ट्रीय समृद्धि सूचकांकश तथा दूसरा– श2030 से पहले भरपूर बिजली की प्राप्तिश।

संसद के केन्द्रीय हॉल में 25 जुलाई, 2007 को शपथ–ग्रहण के बाद नये तथा पूर्व राष्ट्रपति परंपरानुसार घोड़े से खींची जाने वाली गाड़ी (बग्घी) पर राष्ट्रपति भवन लौट गए। यह 25 जुलाई, 2003 को की गयी क्रियाओं की पुनरावृत्ति थी जब पूर्व राष्ट्रपति के.आर. नारायणन मुझे संसद लेकर राष्ट्रपति भवन आए थे। ड्रामा वही रहता है, इसके अदाकार बदल जाते हैं। उस दिन मैं नये राष्ट्रपति श्रीमति प्रतिभा देवीसिंह पाटिल को पाँच वर्ष के लिए उनके घर लेकर आ रहा था।

साल 2002 में मैं अपने दो सूटकेस लेकर आया था और जब मैं राष्ट्रपति भवन से बाहर निकला तो वही दोनों सूटकेस मेरे साथ थे। अन्ना विश्वविद्यालय में ठहरने के लिए मैं शाम को हवाई जहाज से चेन्नई चला गया। अब मैं वहीं लौटकर आ चुका था, जहाँ पाँच वर्ष पहले था और मेरा मिशन अभी–भी देश के नौजवानों को प्रेरित करना था। "

> "विज्ञान तथा आध्यात्मिकता... एक दूसरे के विलोम नहीं हैं बल्कि वे एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं या एक सिक्के के दो पहलू हैं।"

मेरे राष्ट्रपति भवन छोड़ने के कुछ महीने के बाद अन्तरिक्ष की खोज की 50वीं सालगिरह पर आयोजित समारोह के अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन अन्तरिक्ष में पच्चास वर्ष में बात करने के लिए मुझे निमंत्रण मिला था। यह सम्मेलन कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (कालटेक) में 20 सितंबर, 2007 को होने वाला था। सम्मेलन में भाग लेने से मुझे कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, ग्रेजुएट एरोनॉटिकल लैबॉरेटरीज (GALCIT), नॉर्थरोप ग्रुम्मान और NASA के जेट प्रोपल्शन लैबॉरेटरीज के वैज्ञानिकों से मिलने का अवसर प्राप्त होता। मैंने वैज्ञानिकों से कुछ समय के लिए बातचीत की, किन्तु उन लोगों से मिल न सका। क्योंकि मेरे राष्ट्रपति पद के कार्यकाल में अमेरिका का कोई दौरा तय नहीं किया गया था।

अन्तरिक्ष की खोज में लगे वैज्ञानिकों से चर्चाओं में मुझे खासतौर से मजा आता था। इस क्षेत्र के विभिन्न विषय वैज्ञानिकों को कम–से–कम दार्शनिक बना डालते हैं। अपने कार्य के किसी चरण में अन्तरिक्ष के वैज्ञानिकों को अनंतता में अपने स्थान का ही सामना करने को मजबूर होना पड़ता है और यह हमेशा ही बेहतरी के लिए होता है। यदि आप अपने आप को इस विश्व तथा इसके करोड़ों लोगों के संबंध में व्यक्तिगत रूप से देखें तो यह सुखद हो सकता है किन्तु अपने आपको असीम, विशाल ब्रह्मांड में एक व्यक्ति के रूप में देखें तो यह दिमाग को सुन्न करने वाला हो सकता है। साथ ही सुखद भी हो सकता है। और यह आपको मानव–अस्तित्व का एक व्यापक तथा अधिक आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रदान करेगा।

> “हम लोग कौन हैं? हम लोग एक नीरस तारे के महत्वहीन ग्रह पर रहते हैं। वह नीरस तारा जो ब्रह्मांड के एक आकाशगंगा में गुम है और जहाँ लोगों की संख्या से भी अधिक आकाशगंगा हैं।”

इससे पहले कि आप इस श्रेष्ठ डिजाइन पर चिंतन का प्रयास करें, आपको ब्रह्मांड के विस्तार की प्रशंसा करनी चाहिए। हम अपने चारों ओर जो देखते हैं, ब्रह्मांड का एक छोटा हिस्सा है। ब्रह्मांड में हमारी पृथ्वी थार रेगिस्तान में रेत के एक कण के बराबर है। प्रकाश को हमारे पृथ्वी का चक्कर लगाने में एक सेकंड के 10वीं भाग से भी कम ही वक्त लगेगा। ब्रह्मांड का लगभग व्यास कम–से–कम 93 बिलियन प्रकाश वर्ष है। इस का अर्थ यह हुआ कि प्रकाश को ब्रह्मांड के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचने में लगभग 93 बिलियन वर्ष लगेंगे।

सूर्य अपेक्षाकृत एक छोटा तारा है फिर भी लगभग 1.3 मिलियन पृथ्वी इसमें समा सकती हैं। बीटलगीज (Betelgeuse) एक लाल रंग का विशाल तारा है, जो पृथ्वी से 640 प्रकाश वर्ष दूर है, इसमें लगभग एक हजार सूर्य समा सकते हैं। यदि हम सूर्य को एक नारंगी के आकार की वस्तु मानें तो इस नाप पर पृथ्वी इसके चारों ओर 10 मीटर की दूरी पर कक्षा में परिक्रमा करती रेत का एक कण है। इसी नाप पर सूर्य के सबसे समीप तारा Alpha Centaury है, जो लगभग 2,000 किमी दूर है।

एक आकाशगंगा को नारंगियों के एक गुच्छे के रूप में देख सकते हैं। (सचमुच तकरीबन 30 मिलियन किमी व्यास में) जहाँ 3,000 किमी की औसत दूरी पर प्रत्येक नारंगी है। ब्रह्मांड में अनगिनत सौर–मंडल के होने से इस बात की प्रबल संभावना है कि कम–से–कम कुछ सौर–मंडल

में जीवन का अस्तित्व है। इस बात की भी बड़ी संभावना है कि इसके एक अंश में अवश्य ही बुद्धि वाले जीव बसते होंगे।

इस पर चिंतन केवल हमारी जागरूकता में बदलाव ही ला सकता है तथा हमारी क्षेत्रीय मानसिकता और राष्ट्रीय तकरार तुच्छ मालूम पड़ते हैं।

> "धन की कमी सभी बुराइयों की जड़ है।"

कालटेक (Caltech) में सम्मेलन से पहले मुझे अमेरिकन मल्टीनेशनल आई.टी. कॉरपोरेशन के San Jose स्थित CISCO के मुख्यालय में जाने का अवसर मिला। CISCO के CEO जॉन चेंबर्स मेरे स्वागत के लिए लॉबी में प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं जॉन चेंबर्स को उनके वेतन के कारण अधिक जानता था, जो कि 20 मिलियन डॉलर सालाना था। मैं उनके सरल तरीके के कारण उन्हें देखता ही रह गया उनके यहाँ मुझे न तो अकड़ और न ही गर्व दिखाई पड़ा जो भारतीय व्यापार में आमतौर पर देखने को मिलता है।

मैंने जॉन चेंबर्स से पूछा कि उन्होंने किस प्रकार CISCO को 70 मिलियन डॉलर की कंपनी से 38 बिलियन डॉलर कार्पोरेशन तक पहुँचा दिया। उनका उत्तर आसान तथा सीधा था।

उन्होंने कहा, "लगभग 7 वर्षों तक कम्प्यूटर बेचने के बाद मैं वांग लैबोरेटरी चला गया, वहाँ कुछ भी अच्छा नहीं हुआ तथा वांग 1989 में 2 बिलियन डॉलर के लाभ से 1990 में 700 मिलियन डॉलर के घाटे में चला गया। तब मैं यहाँ आ गया। यह सब कल्पना तथा कठिन परिश्रम पर निर्भर करता है। कड़ी मेहनत के बिना कल्पना कुछ भी नहीं है। यूरोप में हमारे बहुत सारे मित्र इस से दो-चार हैं। कल्पना के बिना परिश्रम वैसा ही है जैसाकि दुनिया-भर में करोड़ों-करोड़ गरीब अंजाम दे रहे हैं। कोई बड़ा रहस्य नहीं है। वांग में कल्पना की कमी थी। CISCO को कामयाबी मिली क्यों कि हमने भविष्य को देख लिया, इससे पहले कि दूसरे उसका अनुमान भी लगा पाते।"

चेंबर्स ने तब मुझसे पूछा, "यदि मुझे अनुमति हो, तो सर मैं पूछूँ कि आपकी क्या कल्पना है ?"

मैंने कहा, "देखो जॉन, भारत का उद्देश्य पूरे विश्व को यह दिखाना है कि आर्थिक विकास को किस प्रकार इस तरह बढ़ावा दिया जाए जो सामाजिक समानता को बढ़ाता है। यही वो उद्देश्य है जिसकी मैं कोशिश कर रहा हूँ। दुनिया में 3 बिलियन गरीब लोग हैं। विश्व की जनसंख्या के 6ठे भाग के रूप में हम लोग जो बदलाव करेंगे उससे सभी देशों को लाभ मिलेगा।"

हमारी बातचीत ने मेरे लिए इस बात की पुष्टि कर दी कि सफलता के लिए कल्पना आवश्यक है। कंप्यूटर बनाने तथा लाभ के लिए बाजार में हिस्सेदारी बनाने वाली कंपनियों के लिए यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि किसी देश के लिए, जो कि विकास करना चाहता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति समूह बनाना चाहता हो, तो उसके अंदर कल्पना का होना अवश्यका है चाहे वह शिक्षा, यापार, व्यक्तिगत विकास या व्यवसाय के लिए है। आप किसी भी प्रकार की व्यावहारिक कल्पना के बिना आनंद से नहीं रह सकते।

११

परचिन्ता के दार्शनिक

"मैं हमेशा से एक धार्मिक व्यक्ति इस प्रकार रहा हूँ कि खुदा से कार्य की भागीदारी बरकरार रखता हूँ। मुझे पता है कि सर्वश्रेष्ठ काम के लिए उससे भी अधिक क्षमता की आवश्यकता है जितनी मेरे भीतर है। अतः मुझे सहायता की आवश्यकता भी है, जो केवल खुदा से ही मिल सकती थी। इसलिए मुझे अपनी क्षमता का सही आकलन करना है, तब अपने आप को खुदा के सुपुर्द करके अपनी क्षमता को ५० फीसदी तक बढ़ाना है, तब किसी संदेह तथा डर के बिना काम के लिए उतरना है।"

28 अप्रैल, 2009 को मुझे 'हूवर मेडल' से नवाजा गया। यह एक अमेरिकी पुरस्कार है जिसे अमेरिका के 31वें राष्ट्रपति तथा न्यूयॉर्क के कोलंबिया यूनिवर्सिटी में सबसे पहले इस मेडल को प्राप्त करने वाले 'हर्बर्ट हूवर' के नाम पर दिया जाता है। मुझसे कहा गया कि इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाला एशिया का मैं पहला व्यक्ति था। 'अमेरिकन सोसायटी ऑफ मैकेनिकल इंजीनियर्स' के द्वारा 1930 से प्रत्येक वर्ष यह पुरस्कार दिया जाता है। दुनिया की अनिश्चित स्थिति के बारे में अपनी चिंता जताने के लिए मैंने पुरस्कार प्राप्ति के समय अपने भाषण का प्रयोग किया।

दुनिया के हालात पर मेरी चिंताओं के कारण मेरे राष्ट्रपति कार्यकाल में वृद्धि होती गई। मैंने महसूस किया कि हम लोग संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं, भ्रमित हैं तथा कष्ट में हैं। हम लोगों को इससे अवगत होने की जरूरत है और अपनी जिन्दगी जीने के नजरिये में बदलाव लाना जरूरी है। हमें आपस की प्रतिस्पर्धा को छोड़कर, सबको एक साथ मिलकर जीवन–यापन के लिए सामंजस्यपूर्ण नीतियाँ बनाने की जरूरत है। हमें अपने विकास की जटिलताओं को साझा करने के लिए समाज की आवश्यकता है।

इस विकास के कुछ भाग में हमारी आदिम प्रवृत्तियों के साथ संरचनात्मक रूप से जीवन–यापन को स्वीकार करना सम्मिलित है। आनुवंशिकी में उन्नति ने मनुष्य तथा पशुओं के जीन में काफी समानताएँ दिखाई हैं। अनुसंधान से भी पता चला है कि मस्तिष्क का अंग–तंत्र संघर्ष का एक बड़ा कारण हो सकता है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि युद्ध के लिए मनुष्य की प्रवृत्ति में जैविक आयाम होता है।

इस प्रवृत्ति को बेशक मस्तिष्क संतुलित करता है। अमन–चौन के लिए मानवता की उम्मीद सोच–विचार करने से बढ़ती है। मानव–मस्तिष्क में इस बात को समझने की क्षमता होती है कि इन विवादों के लिए मनुष्य को कितनी कीमत चुकानी पड़ी है! इनसान का जेहन अगर युद्ध से विकास की तरफ जाए तो मानव–सभ्यता एकदम अलग रूप ले सकती है, और दुनिया के तमाम इनसान मिल–जुलकर अमन–चौन से रह सकते हैं।

मस्तिष्क को उन भौतिक कारकों की भी पहचान करनी चाहिए जिसके कारण हम ऐतिहासिक लड़ाइयों को पढ़ते–सुनते हैं। इसे यह भी बताना चाहिए कि भविष्य में युद्धों से कैसे बचा जा सकता है। संसाधनों की कमी, विभिन्न देशों तथा विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में असमान विकास, गरीबी, प्राकृतिक आपदा तथा अहंकार आदि युद्ध के कारण हैं। यहाँ तक कि सदियों से चली आ रही कथित ऐतिहासिक राजनीतिक–भूलें भी एक कारक है।

युद्ध को हवा देने वाले भौतिक कारकों की पहचान करने के बाद यह जरूरी है कि 21वीं शताब्दी में हम युद्धों के संभावित श्रोतों से सावधान रहें। इस प्रकार हम जहाँ तक संभव हो, सैन्य–युद्धों से बचे रहेंगे। तकनीकी सामरिक प्रगति के फलस्वरूप युद्ध मनुष्य के अस्तित्व के लिए बड़ा खतरा बन गया है। आजकल वैसे भी मनुष्य हर मोर्चे पर लड़ाइयाँ लड़ रहा है– पर्यावरणीय असंतुलन और बीमारियाँ एक तरफ तथा दहशतगर्दी दूसरी तरफ। वैसे भी, वह असाधारण रूप से गैर–जरूरी लड़ाइयों को बर्दाश्त कर सकता है।

शांति बनाए रखने के लिए एक मार्गदर्शक, व्यावहारिक सिद्धांत पूरी दुनिया में सबके लिए बेहतर जीवन को निश्चित करेगा। यह युद्ध की अधिकतर प्रेरणा को शीघ्र ही समाप्त कर देता है तथा यह हर प्रकार से मानवता के श्रेष्ठ हित में है। यह कोई छोटी बात नहीं है। इसमें प्रौद्योगिकी के साथ–साथ अधिक ज्ञान और शिक्षण की आवश्यकता होती है।

ऊर्जा तथा पर्यावरण, वातारण की समझ, वाह्य अंतरिक्ष की खोज, विज्ञान की पहुँच में वृद्धि, धन का समान वितरण, जानलेवा बीमारियों से निपटना, नशीले पदार्थों की आदत छुड़ाना तथा परिवारों के बीच संबंध बेहतर रखने जैसे मुद्दों पर विस्तार से विचार करें। इन सबको जानकर हम कह सकते हैं कि मानव जीवन को बेहतर करने के महत्वपूर्ण कार्यों में विश्व के सभी भागों से बुद्धिमान लोगों की आवश्यकता है।

संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि मानव जाति का उद्धार प्रकृति, समाज तथा स्वयं मनुष्य के अज्ञानता–संबंधी और मूर्खतापूर्ण ताकतों पर, चेतना की जीत में निहित है।

वे सिद्धांत जो हमारे देश के विकास की कल्पना को रास्ता दिखा सकते हैं, उन्हीं सिद्धांतों का प्रयोग समान रूप से इस ग्रह (पृथ्वी) को भी अधिक रहने योग्य बनाने तथा मानव समाज

को समृद्ध करने एवं उनमें सामंजस्य बनाने में हो सकता है। वह प्रेरणा जो लोगों को सांसारिक सीमाओं को पार करके एक बड़े उद्देश्य हेतु तैयार होने के लिए प्रेरित करता है, उन प्रेरणाओं को सामूहिक रूप से अपनाना चाहिए। मानव जाति को बचाने की, यह एक तरह की सेवा होगी।

> "उठो, जागो तथा उस समय तक न रुको जब तक उद्देश्य प्राप्त न कर लो।"

11 सितंबर, 2012 को नयी दिल्ली के रामकृष्ण मिशन में स्वामी विवेकानंद के 150वें साल. गिरह समारोह में मुझे बोलने का अवसर मिला। मैंने अपने भाषण का आरम्भ भारत के देशभक्त संत के आज के ही दिन 1882 में शिकागो में कहे वाक्यों से किया। वो वाक्य थे– 'मददगार बनो न कि लड़ाई ठानो', 'सृजन करो न कि नष्ट करो', सामंजस्य तथा शांति स्थापित करो न कि मतभेद'। स्वामी विवेकानंद के प्रबुद्ध शब्द आज भी वैसे ही गूँजते हैं जैसाकि उस समय गूँजे थे जब उन्होंने पहली बार कहे थे।

मैंने जोर देकर कहा कि विश्व को आज भी परस्पर–विरोधी सभ्यताओं का सामना करना पड़ रहा है। भाषा, धर्म तथा संस्कृति में मतभेद के कारण अधिकतर संघर्ष उत्पन्न हुए हैं तथा इसे गरीबी से हवा मिलती है जिससे लगभग आधी दुनिया प्रभावित है। अब तो पर्यावरण की चुनौतियाँ भी राष्ट्र तथा सांस्कृतिक रूप से विभाजित वर्ग के लिए एक साझा समझ पैदा करती हैं। जीवाश्म ईंधन के अविवेकी प्रयोग के कारण हमारे ग्रह की पारिस्थितिकी जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की चपेट में है। जल की कमी होगी, जिससे विश्व की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या प्रभावित होगी तथा विश्व जनसंख्या के बड़े भाग नयी–नयी बीमारियों से ग्रसित हो सकते हैं।

आने वाले वर्षों में विश्व–भर के देशों के लिए स्वामी विवेकानंद के उन सिद्धांतों को लागू करना निश्चित रूप से कठिन होगा जिनका उल्लेख उन्होंने शिकागो के अपने भाषण में किया था। हमें अपने आप से परस्पर–विरोधी प्रश्न करने की आवश्यकता है। क्या हम पारस्परिक रूप से स्थायी समाज में रहने के लिए सामूहिक तौर पर संकल्प कर सकते हैं? हम क्या गरीबों के बिना समृद्धि तथा युद्ध के डर के बिना शांति पा सकते हैं? क्या हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि इस विश्व के सभी नागरिक जहाँ भी रहते हैं,वहाँ का स्थान तथा समाज काफी सभ्य है?

> "चीजों को प्राप्त करने की महान कला की बजाय, चीजों को वैसे ही छोड़ देना महान कला है। जीवन की बुद्धिमता गैर–जरूरी चीजों को बाहर कर देने या निकाल देने में है।"

मेरे लिए यह स्पष्ट था कि इस शताब्दी के लोगों के सामने जो सबसे गंभीर मुद्दे हैं, उनकी राष्ट्रीय सीमाएँ नहीं हैं। इस प्रकार मैंने महसूस किया कि इन मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने तथा परिप्रेक्ष्य देने का सार्थक अवसर चूकना नहीं चाहिए। जब मुझे 'बीजिंग फोरम 2012' में मुख्य वक्ता के रूप में व्याख्यान देने के लिए नियंत्रण मिला तो मैं काफी प्रसन्न था।

चीन में मेरी दो पुस्तकों, 2002 में 'विंग्स ऑफ फायर' (Wings of Fire) तथा 2007 में 'गाइडिंग सोल्स' (Guiding Souls) के प्रकाशन के समय से ही मैं वहाँ की यात्रा करना चाह रहा था। मेरे काम के चलते यह किसी तरह हो नहीं पाया। 'बीजिंग फोरम 2012' विश्वव्यापी चिंता पर चर्चा का एक प्रभावी प्लेटफॉर्म था। 'बीजिंग फोरम 2012' में भाग लेने से सुदूर पूर्व के इस महान राष्ट्र की यात्रा की इच्छा भी पूरी हुई, जिसका मुझे काफी समय से इंतजार था।

चीन ने हमेशा मुझे आकर्षित किया। चीन की संस्कृति विश्व की सबसे स्थायी संस्कृति रही है जो हजारों वर्षों तक कायम रही। मैं चीन की सभ्यता की के दीर्घायु से प्रभावित नहीं था बल्कि मेरी उत्सुकता यह जानने में थी कि पिछले 30 वर्षों में चीन किस प्रकार विश्व शक्ति तक पहुँचा! मेरे संबोधन के बाद की बैठकों ने मुझे इस अद्भुत भूमि को वहाँ के कुछ प्रबुद्ध नागरिकों से समझने का अवसर प्रदान किया।

2 नवम्बर, 2012 को संयुक्त राष्ट्र महासचिव 'बान की–मून' (Ban Ki&moon) तथा कोरिया गणराज्य के पूर्व प्रधानमंत्री 'रो जय–बोंग' (Ro Jai&Bong) जैसे विशिष्ट वक्ताओं की उपस्थिति में मैंने मुख्य वक्ता के रूप में अपना वक्तव्य दिया। अपने संबोधन में मैंने रहने योग्य ग्रह 'पृथ्वी' के बारे में अपनी कल्पना का उल्लेख किया। मैंने प्रतिनिधियों को ध्यान दिलाया कि सामान्य अपील के कारण विभिन्न देश एकजुट होते हैं। अब यह हम पर निर्भर करता है कि क्या जलवायु परिवर्तन तथा ज्वलंत पर्यावरण के मुद्दों पर हम एकजुट होते हैं! रहने योग्य ग्रह पृथ्वी के लिए एक व्यापक योजना पर विचार–विमर्श की आवश्यकता है। केवल एक अंतरराष्ट्रीय योजना ही विश्वभर के सात बिलियन लोगों के प्रबंधन, जल, ऊर्जा, स्वास्थ्य तथा शिक्षा की समस्याओं का हल निकाल सकता है।

अपने संबोधन के दूसरे दिन मैं दोपहर के भोजन पर 'चाईनीज पीपुल्स इंस्टीट्यूट ऑफ फॉरेन अफेअर्स (CPIFA)' के सदस्यों से मिला। वहाँ हम लोगों ने उन कारकों पर चर्चा की जिसके कारण भारत तथा चीन की महान प्राचीन सभ्यताएँ अनेक आक्रमणों तथा कई शताब्दियों तथा विदेशी शासन के बावजूद बची रह सकीं।

हमारी चर्चा से दो महत्वपूर्ण बिंदु निकल कर आए–

इसमें पहला बिंदु लोगों की विशेषताओं या लक्षणों का है। यदि हम भारत के तथा चीन के लोगों के लक्षणें की सूची बनाएँ तो हमें सादगी, प्रकृति से प्रेम, सहनशीलता, अंतरराष्ट्रीय युद्धों के प्रति उदासीनता, 'मैं जानता हूँ यह नहीं चलेगा का रवैया', भूमि की उर्वरता तथा कृषि, उद्योग, मितव्ययतिता, पारिवारिक जीवन का प्रेम, शांतिवाद, संतोष, हास्य, रूढ़िवादिता तथा कामुकता जैसी विशेषताएँ दोनों में मिलेंगी।

अलग–अलग क्षेत्रों में इन लक्षणों के व्यवस्थित क्रम तथा तीव्रता में अंतर होगा किंतु यह कुछ महत्वपूर्ण सामान्य लक्षण हैं। ये भारतीय तथा चीनी लोगों को मंगोल तथा यूरोपीय देशों से अलग करते हैं, जिन्होंने कुछ समय के लिए शासन किया था।

हमारी चर्चा में जो दूसरे महत्वपूर्ण बिंदु निकलकर आए, वह इन दोनों प्राचीनसंस्कृतियों की गुणवत्ता थी, जिसने अपने कई आक्रमणकारियों को अपने देश लौटने की बजाय इन्हीं देशों में रह

जाने के लिए आकर्षित किया था। भारतीय तथा चीनी सभ्यताओं के लिए इन सामयिक राजनीतिक घटनाओं के बाद बने रहना किस प्रकार संभव हो पाया? ये किस प्रकार शेष रहे जबकि दूसरी प्राचीन सभ्यताएँ (जैसेकि रोम की सभ्यता) आक्रमणकारियों के कारण नष्ट हो गईं। इन दोनों महान भूमियों को सांस्कृतिक रूप से इतना स्थिर किसने बनाया?

हमारे दल ने निष्कर्ष निकाला कि वह कारक जिसके कारण भारतीय तथा चीनी संस्कृतियाँ शेष रह गईं, वह परिवार प्रणाली की प्रमुखता थी। भारत तथा चीन में परिवार प्रणाली इस प्रकार परिभाषित तथा संगठित थी कि किसी व्यक्ति के लिए उसकी वंशावली को भूलना असंभव था। सामाजिक अमरता के इस रूप में जिसे भारतीय तथा चीनी अपनी सभी भौतिक संपत्तियों से ऊपर समझते थे, धर्म की भी कुछ विशेषताएँ थीं। पूर्वजों की पूजा की रस्म से इसमें और भी तीव्रता आ गई थी तथा इसकी चेतना भारतीय तथा चीनी लोगों के भीतर गहराई से निहित थी।

भारत तथा चीन पर आक्रमण करने वाले स्थानीय परिवारों से घुलने-मिलने के लिए चिंतित रहते थे ताकि वह भी इस अमरता का हिस्सा बन सकें। चाहे जान-बूझकर हो या अनजाने में हो, उन्होंने यह महसूस किया कि जब किसी की मृत्यु होती है तो उसका अस्तित्व आसानी से समाप्त नहीं होता। वह पारिवारिक जीवन की धारा में रचा-बसा रहता है।

> "व्यक्ति की मूल अवस्था जीवन का कोई समय नहीं है, यह एक मानसिक अवस्था है, यह मनुष्य की इच्छाशक्ति का स्वभाव है, यह कल्पना की गुणवत्ता है।"

चीन के मेरे दौरे के कुछ महीने बाद गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने मुझे एक कॉन्क्लेव में संबोधन के लिए निमंत्रण दिया। "सरकार तथा व्यापार अपने आप में किस प्रकार का बदलाव लाएँ ताकि भारतीय नौजवानों को वे अवसर प्राप्त हो सकें, जिसके योग्य वे हैं," शीर्षक से आयोजित इस कार्यक्रम का आयोजन 'सिटीजन्स फॉर एकाउंटेबल गवर्नेंस' ने अहमदाबाद में 29 जून 2013 को किया था। वक्त गुजरने के साथ मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी जी से मेरे अच्छे संबंध बन गए थे। मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी जी आत्मविश्वास से पूर्ण नेता थे तथा उनके राज्य में नवीनीकरण, ऊर्जा तथा विकास के लिए उनकी प्रतिबद्धता प्रसंशनीय थी। कॉन्क्लेव में मैंने भारत को विकसित देश बनाने के उन सात बिंदुओं पर चर्चा की, जिनका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक 'Squaring the Circle' में किया है:

1. सभी मामलों में, उनके कारण तथा प्रभाव के अकाट्य कानूनों को समझें।

किसी गलत नेता के लिए वोट करना न केवल दुख तथा उदासी का कारण होता है बल्कि यह किसी लोकतांत्रिक देश के भाग्य को नकारात्मक रूप से बदल भी सकता है।

2. सामाजिक-आर्थिक असमानता तथा विभाजन के इतिहास का सामना करें। उदार मानसिकता एवं विशेष प्रयासों से अल्पसंख्यकों, हाशिए पर रहने वालों एवं गरीबों का विकास करके समाधान का रास्ता अपनाएँ।

3. रचनात्मक मस्तिष्क के विकास, स्वयं एकीकृत रूप से समाज का लाभदायक हिस्सा बनने की क्षमता का विकास करने के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार करें ताकि दुनिया–भर में प्रसारित अपनी (भारत की) गलत धारणाओं को दुरुस्त कर सकें।

4. समुदाय पिरामिड के निचले स्तर से शुरू करके समुदायों तथा पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए एवं सामाजिक समस्याओं से निपटने के लिए, सामाजिक उद्यमों के प्रयास और तकनीक के संगम को बढ़ावा दें।

5. नाभिकीय, सौर, वायु तथा renewable energy–नवीनीकरणीय ऊर्जा के स्रोतों के द्वारा 2030 तक ऊर्जा की समस्याओं से निजात पाएँ। सभी नागरिकों को जीवन–निर्वाह हेतु ऊर्जा प्रदान करें, भले ही वे बिल दे सकते हों अथवा नहीं।

6. दूरसंचार, सूचना एवं प्रौद्योगिकी तथा इलेक्ट्रॉनिक्स–उत्पाद का स्वदेशीकरण करें तथा साइबर एवं आतंकी हमलों से देश को सक्रिय सुरक्षा प्रदान करें।

7. सामाजिक लोकतंत्र के रास्ते पर चलकर वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत हों तथा अपने ग्रह (धरती) को रहने के लिए अधिक उपयुक्त बनाने में विश्व का नेतृत्व करें।

मेरे व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद मेरे लिए समय बीतता जा रहा था। मेरे बहुत सारे मित्रों तथा सहयोगियों का या तो निधन हो चुका था अथवा वो रोग– ग्रसित थे या वृद्धावस्था के प्रभाव से दो–चार थे। 1982 से मेरे घनिष्ठ मित्र तथा सहयोगी रहे जनरल आर. स्वामीनाथन की, 15 फरवरी 2013 को मृत्यु हो गई। स्वामीनाथन मेरा दायाँ हाथ रहे जब मैं 'डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरटी' का निदेशक था, तथा उस वक्त भी जब मैं 'डीआरडीओ, मुख्यालय के महानिदेशक का पद भार सँभाला। वह कुछ समय से बीमार थे, अतः निधन पर कोई अचरज नहीं हुआ। फिर भी मुझे उनकी मृत्यु का बहुत दुख हुआ, जबकि मृत्यु के बारे में मैं दार्शनिक दृष्टिकोण रखता था।

स्वामीनाथन की मृत्यु ने संभवतः मेरी चिंताओं में और अधिक वृद्धि कर दी थी, जब लगभग एक वर्ष बाद मैंने सुना कि घनिष्ठ मित्र तथा आध्यात्मिक गुरु 'प्रमुख स्वामी जी' गंभीर रूप से बीमार हैं। प्रमुख स्वामी जी बिस्तर पर थे तथा खाना–पीना छोड़ दिये थे। वह नाममात्र के तरल पदार्थ पर ही जीवित थे, जिसे उनके चिंतित अनुयायी दिया करते थे। मैंने तुरंत ही उन्हें देखने जाने का फैसला किया।

11 मार्च 2014 को मैंने गुजरात में राजकोट के समीप सारंगपुर का दौरा किया। अपनी बीमार अवस्था के बावजूद प्रमुख स्वामी जी काफी खुश तथा उल्लासपूर्ण दिखाई दे रहे थे। उनके चेहरे पर तेज था। उन्होंने शांति तथा प्रबुद्धता फैलाने का काम किया था। उनके अंदर न तो पीड़ा का कोई भाव था और न ही शिकायत की भावना। उन्होंने कुछ नहीं कहा, बस मेरी आँखों में देखा तथा मेरे हाथों को दस मिनट से भी अधिक समय तक पकड़े रखा। मेरे प्रस्थान करने से पहले तथा प्रमुख स्वामी जी को देखकर मेरे मुस्कराने से पहले उन्होंने मुझे एक जप–माला (सुमिरनी) दी जिससे वहाँ उपस्थित साधुओं को खुशी हुई।

मेरे दिल्ली लौटने के बाद मैं कुछ समय के लिए गहन चिंतन करता रहा। जब–जब मैं प्रमुख स्वामी जी से मिला, मुझे अंतर्दृष्टि ही मिली और रहस्योद्घाटन भी हुए थे। उनकी उपस्थिति में मैं अपने 'वास्तविक स्व' से अधिक से अधिक अवगत होता गया। प्रमुख स्वामी जी दुनियाभर के भी लाखों लोगों के गुरु तथा मार्गदर्शक थे। उनका जीवन अपने आप में सेवा तथा उत्कृष्टता के सृजन का उदाहरण था।

उसके बाद के महीनों में प्रमुख स्वामी जी का स्वास्थ्य बेहतर होता गया तथा वह इतने अच्छे हो गए कि फिर से दर्शन दे सकें। मैंने महसूस किया कि मुझे पुस्तक लिखनी चाहिए जो हमारे बीच रहते हुए ही प्रमुख स्वामी जी के लिए श्रद्धांजलि हो। जैसाकि वह श्रेष्ठता के एक सच्चे अवतार थे, मैंने सोचा इस पुस्तक का यही शीर्षक होगा– 'Trascendence : My Spiritual EÛperience with Pramukh Swamiji'.

Transcendence (श्रेष्ठता) उस वर्ष मेरी सबसे महत्वपूर्ण परियोजना बन गई।

पुस्तक पर किए जाने वाले काम ने तात्कालिकता का भाव धारण कर लिया। प्रमुख स्वामी जी की सेहत का हाल देखते हुए मैंने उन्हें जल्द ही वह किताब भेंट करने का इरादा कर लिया। अप्रैल 2015 के मध्य में प्रकाशक को पांडुलिपि सौंपने के बाद मैं हर दिन ही इसकी प्रगति की निगरानी किया करता। हार्ड कवर वाली पुस्तक मेरे पास लगभग रिकॉर्ड समय से आई। यह मुझे 15 जून 2015 को मिली, और मैंने तुरंत ही प्रमुख स्वामी जी के साथ बैठक आयोजित करने के लिए बात की।

स्वामी जी को पुस्तक भेंट करना किसी तीर्थ यात्रा से कम नहीं था। मैं 19 जून, 2015 को अहमदाबाद पहुँचा। चूँकि मैं अपने बुढ़ापे के कारण वहाँ से सारंगपुर एक तीर्थयात्री के परंपरागत रूप में (पैदल) उन्हें देखने नहीं जा सकता था। अतः मैंने यह फैसला किया कि वहाँ हेलीकाप्टर से न जाकर ऊबड़–खाबड़ सड़कों पर कार से जाऊँ।

उस रात लगभग डेढ़ बजे मैं पुस्तक की प्रथम प्रति के साथ बैठा था और सोचता रहा कि मुझे इस पर हस्ताक्षर कैसे करने चाहिए! कुछ सोच–विचार के पश्चात् मैंने टाइटल पेज पर लिखा,

"महा प्रमुख स्वामी जी,
श्रद्धेय आध्यात्मिक गुरु,
मेरी श्रद्धांजलियाँ!"

सारंगपुर में 20 जून, 2015 को एक समारोह में मैंने स्वामी जी को वह पुस्तक भेंट की।

जैसे ही मैंने उन्हें पुस्तक भेंट की, मैंने उनसे कहा कि "आप एक महान गुरु हैं, एक महान आध्यात्मिक गुरु। मैंने आपसे एक बड़ा सबक सीखा है कि किस प्रकार 'मैं' तथा 'मुझे' को समाप्त किया जा सकता है।"

उसके बाद स्वामीनाराण संप्रदाय के साधुओं तथा 300 युवाओं के एक कार्यक्रम में मेरा स्वागत किया गया। मैंने उनसे पूछा, "इस ग्रह को रहने योग्य बनाने के लिए आप क्या करना चाहेंगे?' आपको खुद को विकसित करना होगा तथा अपने जीवन को आकार देना होगा। आपको

यह एक पृष्ठ पर लिखना चाहिए। वह पृष्ठ मानव–इतिहास की पुस्तक का बहुत महत्वपूर्ण पृष्ठ हो सकता है। आप अपने राष्ट्र के इतिहास में उस पृष्ठ की रचना के लिए हमेशा याद किए जाएँगे, चाहे वह पृष्ठ आविष्कार का हो, नवोन्मेष का हो, आविष्कार का हो, या समाज में बदलाव का पृष्ठ हो, या गरीबी दूर करने का पृष्ठ हो, या अन्याय से लड़ने का पृष्ठ हो, या नदियों को जोड़ने के मिशन की योजना का हो, या पृथ्वी को रहने योग्य बनाने के लिए सौर ऊर्जा के साथ स्वच्छ वातावरण के विकास का पृष्ठ हो।"

दिल्ली वापस आते हुए मैं शांति महसूस कर रहा था। यह उद्देश्य को पूरा करने की यात्रा थीः मुझे जो भी लिखने की आवश्यकता थी, मैंने लिख डाला था तथा अपनी इस कृति को मैंने अपने गुरु को भेंट कर दी थी। मुझे पता नहीं था कि प्रमुख स्वामी जी से फिर कब मेरा मिलना हो, पर हमारे बीच एक दिव्य–बंधन स्थापित हो गया था जो चिरस्थायी है। प्रमुख स्वामी जी मेरे आध्यात्मिक जीवन का अंतिम चरण थे। उन्होंने मुझे इस ब्रहमांड के निर्माता तक जाने वाले कक्षा में डाल दिया था। अब किसी योजना या कार्य की आवश्यकता नहीं थी। मैं पारलौकिक जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुका था। मैं शांति महसूस कर रहा था।

१२

श्रेष्ठता

"प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता के बीच जो संघर्ष अब तक रहा है, वह मानव अस्तित्व की कहानी है तथा शांति एवं युद्ध के बीच जो संघर्ष अब तक चला आ रहा है, वह मानव स्पर्धा का इतिहास है, इसे बदलना अति आवश्यक है। वह शक्ति जो हमें इन संघर्षों के बीच अनंत विजय तक ले जाएगी, वह हमारे भीतर स्थित अच्छाई की शक्ति है।"

एरोनॉटिकल इंजीनियर, रॉकेट वैज्ञानिक, मिसाइल मैन, राष्ट्रपति, दूरदर्शी, शिक्षक तथा जीवित स्मृति में सबसे प्रेरणादायक राज्य प्रमुख अबुल पाकिर जैनुल आब्दीन अब्दुल कलाम ये सब कुछ थे। बल्कि इससे भी कुछ अधिक थे।

निश्चित रूप से भारत के सबसे लोकप्रिय राष्ट्रपति तथा महात्मा गाँधी के बाद सबसे सम्मानित भारतीय नेता एपीजे अब्दुल कलाम ने अपने असाधारण जीवन में सभी सामान्य सीमाओं को पार कर लिया था, वह भी बेहद खूबसूरती और विनम्रता के साथ ।

इस महान पुरुष से बहुत कुछ सीखा जा सकता है, कम–से–कम आस्था तो सीखी ही जा सकती है। डॉ. कलाम ने आस्था की शक्ति पर बहुत कुछ कहा है। अपनी सफलता के लिए उन्होंने कभी खुद को श्रेय नहीं दिया बल्कि प्रायः कहा करते थे कि अपने आप को खुदा के हवाले करने से उनके प्रयासों में वृद्धि हुई और उन्हें शक्ति मिली। वह अपने पिताजी की कही हुई बात को याद करते थे, उनके पिताजी ने कहा था, "अपने आप को हमेशा एक शून्य के रूप में देखो तथा खुदा को एक (संख्या) के रूप में। अब यदि शून्य को एक के बायीं ओर लगा दिया जाए

तो यह एक ही रहता है और यही अर्थात् 'शून्य' ही मनुष्य का मूल पद या स्थिति है। लेकिन अगर खुदा किसी व्यक्ति को कुछ देना चाहता है तो वह शून्य को एक के दाईं ओर रख देता है और आप दस बन जाते हैं। अब आप मूल्यवान हैं।"

आस्था के अतिरिक्त डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के जीवन से संभवतः जो सबसे बड़ा सबक सीखा जा सकता है, वह उनके कल्पना की शक्ति है। किसी छोटे कस्बे से ताल्लुक रखने वाले एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के नवयुवक कलाम के पास कोई प्रभावशाली पारिवारिक पृष्ठभूमि नहीं थी और न ही धन–दौलत, जिस पर वह भरोसा कर सकें। उनमें प्राकृतिक प्रतिभा भी नहीं थी किंतु अपनी कल्पना के विशुद्ध बल के आधार पर वह अपने युग के सबसे निपुण भारतीयों में से एक बन गए। उनके सीखने की लगन या उपलब्धियों के रास्ते में कोई भी आड़े नहीं आ सका। उनकी कल्पना के कारण सबकुछ उनके लिए संभव होता दिखाई पड़ा। उनका करियर पथ विस्तृत रूप से उसी प्रकार प्रेरणादायक रहा जैसाकि उस मिसाइल की गति, जिसका उन्होंने निर्माण किया था।

डॉ. कलाम अपने पूरे जीवन में कल्पना की शक्ति से आश्वस्त रहे। वह प्रायः कहा करते थे कि "माता–पिता तथा शिक्षकों का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य इस बात को सुनिश्चित करना है कि बच्चे अपनी कल्पना का प्रयोग करें।" युवाओं तथा बच्चों से भी वह सपने, कल्पना तथा आकांक्षाओं की बात करते थे क्योंकि उन्हें दृढ़ विश्वास था कि एक सफल जीवन के लिए यह महत्वपूर्ण है।

यह भी सत्य है कि काम के लिए कल्पना कुछ भी नहीं है। नवयुवक कलाम कक्षा में हमेशा अव्वल नहीं रहे किन्तु कड़ी मेहनत वाली उनकी आश्चर्यजनक क्षमता ने उन्हें शैक्षणिक सफलता दिलाई। बाद में अपने कामकाजी जीवन में उन्होंने हमेशा अपनी कल्पनाओं के आधार पर काम किया।

चाहे होवर क्राफ्ट बनाना हो या उपग्रह को कक्षा में प्रवेश कराना हो अथवा किताब ही क्यों न लिखना हो, उनके समीप काम की प्रकृति में अंतर नहीं था। वह शांति और मजबूती के साथ मिशन में अपने आप को लगाते और तब तक दम नहीं लेते जब तक कि वह पूरी तरह से पूरा या सम्पन्न न हो जाए, चाहें उसमें घंटों, दिनों, महीनों, वर्षों लग जाएँ। जब अवरोधों का सामना होता तो वह सहनशील बन जाते और जब उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती तो वह विनम्र रहते।

एक बार मैने डॉ. कलाम से पूछा कि वह अपने जीवन को किस प्रकार देखते हैं! वह अपने उत्तर में एकदम यथार्थवादी थे। उन्होंने कहा, "एक नवयुवक के रूप में मैंने हमेशा अपनी चेतना की बात मानी। मेरा हृदय हमेशा मेरे माता–पिता, मेरी बहन जोहरा तथा मेरे भाई माराकयर तथा मेरे परिवार के अन्य सदस्यों, मेरे शिक्षक तथा उन लोगों के साथ रहा, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मेरी सहायता की।" मैंने उन तमाम लोगों को एक बराबर इज्जत की निगाह से देखा जो भी मेरी राह में आए, चाहें अच्छे के लिए हों या बुरे के लिए। क्योंकि यह खुदा की मर्जी थी कि उनका व्यवहार मेरे साथ अच्छा रहा या बुरा रहा। मैं किसी भी नशे और प्रलोभन से डरता था, मैंने अपनी कमाई का अधिकांश भाग दान में दे दिया तथा इसके बारे में किसी को जानकारी भी नहीं थी। मैं न्यायसंगत रहा, जब नेतृत्व वाले पद मुझे दिए गये। कठिन परिस्थितियों में खुदा को याद करने के दौरान मैं जान–बूझकर अकेले रहना पसंद करता था ताकि मेरी आत्मा की वेदना और पीड़ा को मेरे आँसू धो डालें।

इन सभी शब्दों में सबसे स्पष्ट था– डॉ. कलाम का जीवन के प्रति नैतिक दृष्टिकोण। डॉ. कलाम अखंडता के अवतार थे जिसे वह पूर्ण होने की अवस्था उसी प्रकार मानते जिस प्रकार 'पूर्णांक' होता है, संभवतः कलाम साहब का नैतिक व्यवहार उनकी उपलब्धियों को विशेषतः प्रशंसनीय बना देता है। वास्तव में उनका महत्व बहुत ही कम हो जाता, यदि वह भ्रष्ट तथा गलत तरीके से किसी काम में संलग्न रहते। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार किसी विद्यार्थी का उच्चतम अंक से सफल होना व्यर्थ है, यदि उसने परीक्षा में नकल किया है। डॉ. कलाम दूसरों के मामले में संभवतः जितने कठोर हो सकते थे, वह अपने मामले में अखंडता को बरकरार रखने के लिए उससे कहीं ज़्यादा कठोर थे। काम करने का उनका यह अपना तरीका था।

डॉ. अब्दुल कलाम ने अपने लिए ऐसे मानक बना लिए थे जो दूसरों के लिए प्रेरणा–श्रोत थे। वह अपने सहयोगियों के लिए एक उदाहरण थे जो उनके लिए तथा देश के लिए काम करते थे। यह कहा जा सकता है कि यह एक तरह का सबसे बड़ा सबक है जिसे डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के जीवन से सीखा जा सकता है। उनके नक्श–ए–कदम पर चलकर तथा उनकी बातों को सुनकर आप एक बेहतर और संतोषजनक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आप सिद्धांतों के साथ जिएँगे, जिस तरह उन्होंने जीवन जिया। आस्था के अनुसार काम करेंगे जैसाकि उन्होंने किया। आपको अपने सपनों के पूरे होने तक उसे देखते रहना चाहिए–

"मैं कहीं नहीं गया हूँ
मैं एक कुँए की तरह इसी महान भूमि पर रहता हूँ
इसके करोड़ों बच्चों को देखते हुए
ताकि मेरे अंदर से
अपार दिव्यता प्राप्त करें
और खुदा की रहमत को हर जगह फैलाएँ
जैसे कि कुँए से पानी निकाला जाता है।"

जीवनवृत्त

1931: 15 अक्टूबर को रामेश्वरम, तमिलनाडु में जन्म।

1946–50 : श्वार्त्ज उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रामनाथपुरम, तमिलनाडु में स्कूली–शिक्षा।

1954 : सेंट जोसेफ कॉलेज, तिरुचिरापल्ली, तमिलनाडु से भौतिक विज्ञान में स्नातक किया।

1958 : मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की और 'तकनीकी विकास एवं उत्पादन, निदेशालय, डीटीडीपी (वायु)' में नौकरी प्रारम्भ की।

1959 : एचएएल को अनुसंधान एवं विकास सहयोग प्रदान करने के लिए डीआरडीओ द्वारा स्थापित 'अंतरिक्ष विकास प्रतिष्ठान (एडीई)' में पहले बैच की भरती में नियुक्ति मिली।

1962 : भारत सरकार द्वारा भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम की योजना बनाने के लिए गठित 'भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति (INCOSPAR)' में कार्यभार ग्रहण किया।

1963 : संयुक्त राज्य अमेरिका में 'लैंग्ले अनुसंधान केन्द्र (LaRC)', 'गोड्डार्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर (GSFC)' एवं 'वैल्लाप्स फ्लाइट सेंटर (WFC)' में NASA द्वारा प्रशिक्षण।

1980 : भारत ने रोहिणी उपग्रह को एसएलवी–3 के साथ पृथ्वी के निकट कक्षा (400 किमी) में स्थापित कर अन्तरिक्ष परिवार में अपनी उपस्थिति दर्ज की, डॉ. कलाम इसके 'परियोजना निदेशक' थे।

1981 : भारत सरकार ने देश के तीसरे सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'पद्म भूषण' से नवाजा। अन्ना विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टर ऑफ साइन्स' की मानद उपाधि प्रदान की । इनको प्राप्त डॉक्ट्रेट की कुल 48 मानद उपाधियों में यह प्रथम उपाधि थी।

1982 : डीआरडीओ लौट आए तथा 'सुरक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला (डीआरडीएल)', हैदराबाद में निदेशक के रूप में कार्यभार सँभाला। भारत में मिसाइल प्रौद्यौगिकी के विकास की यह नोडल एजेंसी है।

1988 : जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल पृथ्वी का 25 फरवरी को सफल परीक्षण। मिसाइल इंटीग्रेशन के विश्व–स्तरीय सुविधा अनुसंधान केन्द्र, इमारत, (आरसीआई) का हैदराबाद में उद्घाटन।

1989 : मध्यम दूरी की बैलिस्टिक मिसाइल प्रणाली 'अग्नि' का 22 मई को सफल परीक्षण।

1990 : देश का दूसरा सबसे बड़ा नागरिक सम्मान 'पद्म विभूषण' प्रदान किया गया।

1992 : रक्षा मंत्री के 'वैज्ञानिक सलाहकार' एवं सुरक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन, (डीआरडीओ)' के महानिदेशक नियुक्त।

1997 : देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा गया और 'सर सी.वी. रमन' के बाद उक्त सम्मान पाने वाले देश के 'दूसरे वैज्ञानिक' बन गये डॉ. कलाम।

1988 : भारत ने मई में पोखरण–II परमाणु परीक्षण किया, कलाम साहब इसके 'मुख्य परियोजना संयोजक' थे।

1999 : भारत सरकार के प्रथम 'प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार' नियुक्त हुए जिसे 'कैबिनेट मंत्री' का दर्जा प्राप्त था। उस समय खासतौर से इन्हीं के लिए यह पद सृजित किया गया था।

2001 : प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रोफेसर के (नये) रूप में एक बार फिर अन्ना विश्वविद्यालय का रुख किया।

2002–2007 : भारत के सर्वोच्च संवैधानिक पद हेतु निर्वाचित हुए एवं 'राष्ट्रपति' के गरिमामय पद पर आसीन रहे ।

2009 : 'अंतरराष्ट्रीय वॉन कर्मन विंग्स' सम्मान एवं 'हूवर पदक' प्राप्त हुआ ।

2015 : राजीव गाँधी भारतीय प्रबंधन संस्थान (आर.जी. आई.आई.एम.), शिलांग में एक व्याख्यान देते समय अचानक दिल का दौरा पड़ने से 27 जुलाई को देहावसान।

डॉ कलाम के प्रमुख प्रोजेक्ट

डायमंड रॉकेट अवस्था– IV

डॉ. कलाम ने एसएलवी –3 के चौथे चरण के डिजाइन को डायमंड (डायमंड का फ्रांसीसी पर्यायवाची) वायु ढांचे के अनुकूल बनाने के लिए बदलाव किया डायमंड पहला उपग्रह प्रक्षेपक था तथा इस समय बनाया जानेवाला ऐसा प्रक्षेपक जिसका निर्माण संयुक्त राज्य अमेरिका या सोबियत रूस द्वारा नहीं किया गया था। इसके 400 एमएम के व्यास को बदलकर 650 एमएम कर दिया गया तथा प्रणोदक धन को 250 किग्रा से बढ़ाकर 600 किग्रा कर दिया गया। नए डिजाइन का विकास करने में इस दल को दो वर्ष लग गए। जो डायमंड रॉकेट की तीसरी तथा उच्चतर अवस्था की। एन फ्रांस ने यूरोपीयन एरिअन प्रक्षेपक के पक्ष में अचानक ही अपनी राष्ट्रीय प्रक्षेपण परियोजना को छोड़ दिया। लेकिन उसने सितंबर 1979 में चौथी अवस्था के सफल परीक्षण उड़ान से पहले यह नहीं किया। इस प्रयास के साथ ही भारत में मिश्रित पदार्थ प्रौद्योगिकी के आगमन की शुरूआत हुई और भारत का पहला फिलामेंट मशीन त्रिवंडम के धूम्बा इक्वेटोरिअल रॉकेट लॉचिंग स्टेशन (टीईआरएलएस) स्थापित किया गया।

उपग्रह प्रक्षेपण यान

उपग्रह प्रक्षेपण यान (एसएलवी–3) भारत का पहला प्रायोगिक उपग्रह प्रक्षेपण यान था जो पूरी तरह से ठोस, चार अवस्थावाला यान का जिसका वजन 17 टन और उॅचाई 22 मीटर थी और यह यान 40 किग्रा श्रेणी भार को पृथ्वी की निम्न कक्षा में स्थापित करने में सक्षम था। इसे एसएलवी –3 कहा गया क्योंकि यह वर्णित तीन विन्यासों में यह तीसरा विफल था। कभी भी एसएलवी–1 या 2 का निर्माण नहीं किया गया।

एसएलवी–3 का सफल प्रक्षेपण 18 जुलाई 1980 को श्री हरिकोटा रेंज से किया गया, जब रोहिणी उपग्रह, आरएस–1 को कक्षा में स्थापित किया गया और इसके साथ भारत उपग्रह प्रक्षेपण करने वाले देशों के विशिष्ट समूह का छठा सदस्य बन गया। एसएलवी–3 द्वारा यान को उड़ते समय पूर्व निर्धारित प्रक्षेप पथ पर चलाने के लिए खूली घुमावदार वक्र निर्देशन प्रणाली का प्रयोग किया गया। एसएलवी–3 की अगस्त 1979 की प्रथम प्रायोगिक उड़ान आंशिक रूप से

ही सफल रही थी। जुलाई 1980 के प्रक्षेपण के अलावा मई 1981 और अप्रैल 1983 में दो और प्रक्षेपण हुए जिनके द्वारा सुदूर संवेदी संवेदकों को ले जाने वाले रोहिणी उपग्रहों को कक्षा में स्थापित किया गया।

एसएलवी–3 परियोजना की सफल परिणति से ऑगमेंटेड सटेलाइट लांच वहीकल (एएसएलवी), पोलर सटेलाइट लॉच वहीकल (पीएसएलवी) तथा ज्योसिंक्रोनस सटेलाइट लांच व्हीकल (जीएसएलवी) जैसी विकसित प्रक्षेपण यान परियोजनाओं का मार्ग प्रशस्त हुआ।

रोहिणी उपग्रह

भारतीय आंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (दूसरो) द्वारा प्रक्षेपित उपग्रहों की श्रृंखला को रोहिणी नाम दिया गया। आरएस–1 35 किग्रा वजन का घुमावदार स्थिर उपग्रह था जिसका डिजाइन इस प्रकार बनाया गया था कि इसकी 16 वाट उर्जा संचालन की क्षमता थी। एसएलवी–3 द्वारा इसका 305 ×919 किमी की कक्षा में 44.70 नत के साथ सफल प्रक्षेपण किया गया। प्रक्षेपण अवस्था के दौरान एसएलवी–3 की चौथी अवस्था के सभी मानदंडों को धरातल स्थित फेंडों को आरएस–1 द्वारा प्रेषित कर दिया गया। उपग्रह का कक्षीय जीवन नौ माह का था। इस उपग्रह द्वारा डिजिटल सन सेंसर, मैग्नेटोमीटर तथा तापमान संवेदकों को ले जाया गया। इसका अल्युमिनियम के मिश्राधातु का बनाया गया था। इस उपग्रह का परियेाजना काल 1.2 वर्ष तथा कक्षीय जीवन 20 माह का था।

रिसर्च सेंटर इमारत (आरसीआई)

सत्तर के दशक में डीआरडीओ ने टैंकरोधी प्रक्षेपास्त परीयोजना की श्रृंखला के विकास के लिए लगभग 2,100 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया गया था। इस बात के प्रति जागरूक कि समेकित निर्देशित प्रक्षेपास्त विकास परियोना के मार्ग में प्राथमिक चुनौती प्रयोजनीय मौलिक प्रौद्योगिकी का विकास था, डॉ. कलाम ने विशिष्ट पदार्थ, अन्तः स्थापित इलेक्ट्रॉनिक्स एवं साफटवेयर के क्षेत्र में अग्रिम अग्रणी अनुसंधान करने के उद्देश्य से यहॉ एक उच्च प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र का आदर्श स्थापित करने का फैसला किया। इसमें उस आधार शिला का निर्माण भी शामिल था। जिस पर एक महत्वाकांक्षी प्रक्षेपास्त परियोजना का सफल निर्माण हो सके। प्रक्षेपास्त प्रणाली नई सुविधा की आधारशिला अगस्त 1985 में प्रधानमंत्री राजकीय गॉधी ने रखी और इसका शिलांयास 27 अगस्त 1988 को राष्ट्रपति आर वेंकटरमण ने किया। वास्तव में यह प्रौद्योगिकी और व्यवस्था के विकास की अन्तर्दृष्टि थी न कि विशिष्ट प्रक्षेपास्त की जिसने इस संगठन की सफलताओं को संभव बनाया।

पृथ्वी प्रक्षेपास्त

पृथ्वी प्रक्षेपास्त व्यापक श्रेणी की प्रक्षेपास्त प्रणाली के विकास एवं निर्माण की दिशा में आरम निर्मरता हासिल करने के लिए 1983 में शुरू किए गए समेकित निर्देशित प्रक्षेपास्त विकास परियोजना के अधीन विकसित किया जाने वाला प्रयास प्रक्षेपास्त था।

पृथ्वी का सफल उड़ान परीक्षण 25 फरवरी 1988 को सहार में किया गया। भारत में सैनिक विकास के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि इस परीक्षण ने भावी निर्देशित प्रक्षेपास्त्र के

मौलिक मापदंड के विकास की क्षमता को स्थापित किया। पृथ्वी प्रक्षेपास्त में लंबी दूरी की धरातल प्रक्षेपास्त्र से वायु में प्रहार करनेवाले प्रक्षेपास्त्र के रूप में परिवर्तन का प्रावधान था। इस जहाज पर भी तैनात किया जा सकता था। एक सौ मीटर से कम का सीइवी भी प्राप्त कर लिया गया था।

इस सफल प्रक्षेपण से क्षेत्र में विशेष कर उन पड़ोसी देशों में जिनके साथ हमारे संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं हैं, राजनीतिक आघात की लहर दौड़ गई। इसके रूपांतरणों द्वारा या तो 39 यादव एवं ठोस दोनों ईंधनों का प्रयोग किया गया। युद्धक्षेत्र के प्रक्षेपास्त्र के रूप में विकासित इस प्रक्षेपास्त्र द्वारा सामरिक परमाणु अस्त्र की भूमिका के रूप में इसमें परमाणु अस्त्रों को ले जाने की क्षमता है।

अग्नि प्रक्षेपास्त्र

अग्नि प्रक्षेपास्त्र लंबी दूरी की, परमाणु अस्त्रों को ले जाने में समर्थ धरातल से धरातल पर प्रहार करने वाला लडाकू प्रक्षेपास्त्र है। इस शृंखला का प्रथम प्रक्षेपास्त्र, अग्नि –1, का सफल परीक्षण 1989 में किया गया। प्रथम अवस्था में ठोस ईंधन तथा दूसरी अवस्था में तरल ईंधन के प्रयोग वाला यह प्रक्षेपास्त्र 1000 किग्रा का पारंपरिक भार था 2.5 किमी/सेकंड की रफ्तार से 700 से 1200 किमी की सीमा में परमाणु अस्त्रों को ले जाने में समर्थ है। अग्नि–1 का विकास तीस लाख डॉलर के अल्प वजट में किया गया था और उसने भारत को लडाकू प्रक्षेपात्र बनाने वाले देशों के समूह में स्थापित कर दिया है।

अग्नि के प्रक्षेपण की सफलता के बावजूद रक्षा संस्थान

प्रतिद्वंद्वी राष्ट्रो प्रक्षेपास्त्र क्षमता के विकास के प्रति सजग थे। जब अग्नि प्रक्षेपास्त्र विकासाधीन ही था, पाकिस्तान ने भी इस क्षेत्र में काफी प्रगति कर ली थी। इसने धरातल से धरातल पर प्रहार करने वाले दो हतफ–1 तथा हतफ–2 प्रक्षेपास्त्रों का परीक्षण कर लिया था जिसका निर्माण चीन की सहायता से किया गया था।

पाकिस्तान ने दावा किया कि हतफ की मारक क्षमता 80 किमी और इसके उत्तराधिकारी की मारक क्षमता 300 किमी थी। इस घटना ने भारत कि अग्नि और इसके चार छोटे संस्करणों के पूर्ण विकास की दिशा में शीध्र ही सक्रिय कर दिया।

इस मूल प्रोघोगिकी प्रदर्शक को अग्नि-II, III, IV तथा प्रक्षेपास्त के लिये सर्व ठोस ईधन के रूप में विकसित किया गया। अग्नि-II की मारक क्षमता 2000–2500 किमी; अग्नि-III की मारक क्षमता 3500 किमी की सीमा है तथा यह 1.5 टन अस्त्र ले जा सकता है। अग्नि-IV की की मारक क्षमता का विस्तार करके 4000 किमी कर दिया गया और अग्नि-V की के विकास के साथ ही भारत 5,500 किमी से अधिक तक के निशाने पर प्रहार करने में समर्थ हो गया और भारत के पास अन्तर्महादेशीय लड़ाकू प्रक्षेपास्त्र दागने की क्षमता आ गई।

व्हीलर द्वीप

हर बार उडीसा के चाँदीपुर स्थित अंतरिम परीक्षण केन्द्र में प्रक्षेपण की योजना बनाने के बाद पुनस्थापित करने की अप्रियता एवं निरर्थक प्रक्रिया तथा मीडिया के ध्यानाकर्षण से बचने के लिए

प्रक्षेपण स्थल को व्हीलर द्वीप ले जाने का प्रस्ताव किया जो चाँदीपूर तट से 20 किमी दूर स्थित दो वर्ग किमी क्षेत्र का एक भूखंड था।

डॉ0 कलाम कागजी कारवाई करवाने तथा भूमि हस्तांतरण करने में वन तथा पर्यावरण अधिकारियों सहित जिला प्रशासन के साथ व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित हुए। अंतिम स्वीकृति के लिए उडीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक से मिले। बीजू पटनायक ने डॉ0 कलाम का सहर्ष अभिवादन किया। उन्होनें कहा, 'कलाम, आप एक अच्छे इंसान हैं। साराभाई के दिनों से ही मैं आपके काम का अनुसरण करता हूँ। आप जो कुछ माँगते हैं, मैं दूँगा। आपकी परियोजना प्रक्षेपास्त्र परियोजना–देश के लिए बहूत महत्वपूर्ण है। उडीसा से आपको जो कुछ भी चाहिए वह आपका है.....मुझसे एक वायदा कीजिए कि आप एक अन्तर्महादेशीय लडाकू प्रक्षेपास्त्र बनाऐंगे। जिस दिन भारत एक अन्तर्महादेशीय लडाकू प्रक्षेपास्त्र बना लेता है, एक भारतीय के रूप में मैं ख़ुद को ताकतवर समझुँगा।

बाद में ब्हीलर द्वीप अधिकांश भारतीय प्रक्षेपास्त्र के लिए प्रक्षेपास्त्र परीक्षण सुविधा स्थल बन गया, लेकिन बीजू पटनायक से किए उनके वादे को 17 अप्रैल 1997 को उनकी मृत्यू से पहले पूरा नहीं किया जा सका। आज सभी अग्नि प्रक्षेपण इसी सुविधा की सहायता से होते हैं। डॉ0 कलाम को सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में उडीसा सरकार ने सितंबर 2015 में ब्हीलर द्वीप का नाम बदलकर अब्दुल कलाम द्वीप कर दिया।

भारत 2020 अन्तर्दृष्टि

कलाम की वर्ष 2020 तक भारत को एक विकसित देश के रूप में देखने की अन्तर्दृष्टि उनकी इस परख से उत्पन्न होती है कि विश्व का संचालन करने वाली बडी शक्तियों को किस प्रकार राष्ट्रीय हित में प्रयोग किया जाए। वर्ष 1993 में डॉ0 कलाम ने टेक्नालॉजि इंफार्मेशन, फॉरकास्टिंग एंड असेसमेंट काउंसिल (टीआइएफसी) के प्रमुख के रूप में पदभार ग्रहण किया। उन्होनें वर्ष 2020 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र के रूप में विकसित करने की अन्तर्दृष्टि के विकास के 500 विशेषज्ञों के एक दल द्वारा किए गए विस्तृत अध्ययन को प्रस्तुत किया।

'वर्ष 2020' में भारत में विकास के पाँच क्षेत्रों की पहचान की गई–वर्तमान उत्पादन को दुगुना करने पर लक्षित कृषि एवं खाघ प्रसंस्करण; विश्वसनीय विघुत शक्ति से युक्त आधारिक संचरना जो ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाऐं उपलब्ध कराए तथा सौर ऊर्जा संचालन में वृद्धिः निरक्षरता, सामाजिक सुरक्षा तथा जनसंख्या के लिए संपूर्ण स्वास्थ्य पर केद्रित शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधा; सुदूर क्षेत्रों में शिक्षा, दूरसंचार तथा टेलीमेडिसीन को बढावा देने के लिए ई–शासन को प्रोत्साहित करने के लिए सूचना एवं दूरसंचार प्रौघोगिकी; तथा प्रमुख प्रौघोगिकी एवं सामरिक उघोग विशेषकर परमाणु प्रौघोगिकी अंतरिक्ष प्रौघोगिकी एवं रक्षा प्रौघोगिकी।

केन्द्रीय वित्त मंत्री अरूण जेटली ने 31 जुलाई 2016 को कहा कि कम से कम 2030 तक भारत को एक विससित राष्ट्र बनाने के लिए भारत का विश्वसनीय राजनीति की आवश्यकता है जो यह सुनिशचित करे कि ऐसी विश्वसनीय नीतियाँ हों जो इसे विकसित राष्ट्र बनने के लिए उस जीडीपी विकास दर को प्राप्त करने में मदद करे। यह भूतपूर्व राष्ट्रपति एपीजे कलाम द्वारा दिए गए लक्ष्य से दस वर्ष बाद है।

ब्रह्मोस प्रक्षेपास्त्र

आइजीएमडीपी की तरह के प्रक्षेपास्त्र बना लेने मात्र से संतुष्ट नहीं होने वाले डॉ0 कलाम अत्याधुनिक हथियार बनाना चाहते थे। रूस के वैज्ञानिक संस्थानों के साथ अपनी अपार सदभावना का दोहन करते हुए डॉ0 कलाम ने 1998 में एक संयुक्त उपक्रम की स्थापना की और रूस के एनपीओ मोहिनॉरत्रेनिया और डीआडीओ के बीच समान साझेदारी की स्थापना की ताकि सूपरसोनिक क्रूस मिसाइल ब्रह्मोस का निर्माण एवं विवणन किया जा सके। इस प्रक्षेपास्त्र का नाम ब्रह्मपुत्र एवं मास्को नदियों पर रखा गया।

ब्रह्मोस की दो अवस्थायें हैंः प्रथम, ठोस ईधन रॉकेट की है, जो प्रक्षेपास्त्र को ध्वनि बाधा ध्वस्त करने के लिए ले जाती है (मैच 1)। दूसरी अवस्था जो द्रव ईधन पर केंद्रित रैमजेट है, इस मैच 2.8 तक प्रेरित करती है और इसकी अधिकतम क्षमता 290 किमी है। जहाज से तथा घरातल से प्रक्षेपित किए जाने वाले प्रक्षेपास्त्र 200 किग्राम तक अस्त्र ले जा सकते हैं जबकि वायुयान से प्रक्षेपात्र (ब्रह्मोस A) का रूपांतरण 300 किग्रा तक अस्त्र ले जा सकता है।

यह प्रक्षेपास्त्र 10 मीटर ऊँचाई तक लहरों के शीर्ष पर भी भ्रमण कर सकता है, इस प्रकार यह जल विमान बन जाता है। डॉ0 कलाम की अन्तर्दृष्टि के अनुरूप, ब्रह्मोस आज आपरेशन में सबसे द्रूतगामी भ्रमण करने वाला प्रक्षेपास्त्र है।

कोरोनरी स्टेंट

भारत के मिसाइल मैन ने न सिर्फ वायुगतिकी प्रौघोगिकी को आलोकित किया। हमेशा से ही बहुमुखी और ऐसे मस्तिष्क वाला जो अपने ही क्षेत्रों की सीमाओं से परे पडताल करने वाला था। डॉ0 कलाम ने अनेक ऐसी प्रौघोगिकी के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई जो समाज के वंचित वर्गो के लिए वरदान बनी। उन्होंने हैदराबाद के डिफेंस मेटलॉर्जिकल रिसर्च लेबोरेटरी में डेन्टाफेराइठ की ऑस्टेनाइटिक तारों के विकास द्वारा कोरोनरी स्टेंन्ट के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई; इन तारों की सतह तारों से प्रेरित माइक्रो चैनल से स्वत्रंत होती है।

हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ0 बी. सोमा राजू से डीआडीओ वैज्ञानिकों को मिले सुझावों के साथ ही अन्तर्विषयक बायोमेडिकल सहयोग की शुरूआत हुई जो भारत में अनोखा था। कलाम–राजू स्टेंन्ट की शुरूआत के साथ ही आयातित स्टेंन्ट के मूल्य में बाजार में भारी गिरावट आई और आज भी भारतीय रोगियों को दुनिया में सबसे कम कीमत पर स्टेंन्ट उपलब्ध हैं। नवस्थापित आईसीआईसी बैंक की ई–टेक्नोलॉजी इस्टीट्यूशन्स (टीआई) प्रोग्राम द्वारा हैदराबाद में कार्डियोवैसक्युलर टेक्नोलॉजी इस्टीट्यूट की स्थापना के लिए दस लाख डॉलर की वित्तीय सहायता दी गई। इससे डॉ0 बी. सोमा राजू द्वारा केअर हॉस्पिटल की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ जो वर्ष 2016 में पाँच सौ मिलियन डॉलर का उपक्रम है।

पोखरण II परमाणु परीक्षण

पोखरण राजस्थान के जैसलमेर जिले के थार मरूस्थल के सुदूर क्षेत्र में स्थित एक छोटा सा शहर है। यहाँ पहला भूमिगत परमाणु परीक्षण वर्ष 1974 में किया गया। परमाणु क्षमता युक्त भारत

का विकास पोखरण से ही शुरू होता है। आने वाले कई वर्षों तक भारतीय सेना के इंजीनियरों के दस्ते के 58 इंजीनियर रेजीमेंट ने तीन गहरे गड्ढे खोदे थे। ये इंजीनियर जासूसी उपग्रहों द्वारा उनकी गतिविधियों के पकडे जाने से बचने के लिए रात के समय ही काम करते थे और एक साल से भी अधिक समय तक निरंतर तत्परता की अवस्था में रखे गए ताकि निर्णय लेने के इस दिनों के भीतर भी परीक्षण किया जा सके।

गोपनीयता बनाए रखने के सख्त शिष्टाचार के रूप में, डॉ0 कलाम और डॉ0 चिदंबरम जब भी पोखरण के दौरे पर गए हमेशा सैनिकों वाले हरे वस्त्र पहने और उनकी असली पहचान वहाँ काम करने वाले लोगों तक को मालूम नहीं हो पाया। डॉ0 कलाम को मेजर जनरल पृथ्वीराज कहा जाता था और चिदंबरम को मेजर जनरल नटराज बुलाया जाता था। भाभा एटोमिक रिसर्च सेंटर (बीएआरसी) के निर्देश डॉ0 अनिल काकोडकर तथा बीएआरसी तथा डीआडीओ के सौ अन्य वैज्ञानिक एवं प्रौघोगिकीविद, जो पोखरण में परीक्षण करने के लिए आए, उन्हें भी सैनिक वर्दी पहनना पडा और उन्हें छद्म पहचान दी गई।

11 मई 1998 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन भारत मानक समय के अनुसार 3:43:44.2 पर एक साथ तीन उपकरणों का विस्फोट किया गया। तीन विस्फोटों की सम्मिलित ऊर्जा द्वारा क्रिकेट के मैदान के आकार का भूक्षेत्र धरातल से कुछ मीटर ऊपर तक उठा दिया गया और हवा में धूल और रेत को लहराते बादल छा गए। दो दिनों बाद 13 मई 1998 को दो सब किलोटन के उपकरणों का भूमिगत विस्फोट किया गया। पोखरण-II परमाणु परीक्षण ने यह प्रमाणित कर दिया था कि भारत में अधिक शक्तिशाली एवं हल्के परमाणु अस्त्रों का आगमन हो गया है; ये परमाणु अस्त्र इतने हल्के हैं कि उन्हें प्रक्षेपास्त्र द्वारा ले जाया जा सकता है।

28 मई 1998 को पाकिस्तान ने ब्लूचिस्तान प्रांत के चगाई जिले के रास कोह पहाडियों में परमाणु परीक्षण किए। इसके बाद एक अन्य परीक्षण 30 मई 1998 को किया गया। इससे हमारे पडोस में परमाणु बम के होने तथा हमारे पुराने शत्रुओं द्वारा भारत पर आक्रमण के उनके नापाक इरादों का भंडाफोड हुआ। पोखरण-II से वास्तव में छल, धोखा एवं पाकिस्तान के उदार मित्रों द्वारा भारत को दबाकर रखने मे उनकी संलिप्तता सामने आई। इससे दक्षिण–पूर्व एशिया का शक्ति संतुलन हमेशा से भारत के पक्ष में बदल गया।

विद्यार्थी विज्ञान मंथन द्वारा विभा (VIBHA) विवरण पुस्तिका का विमोचन

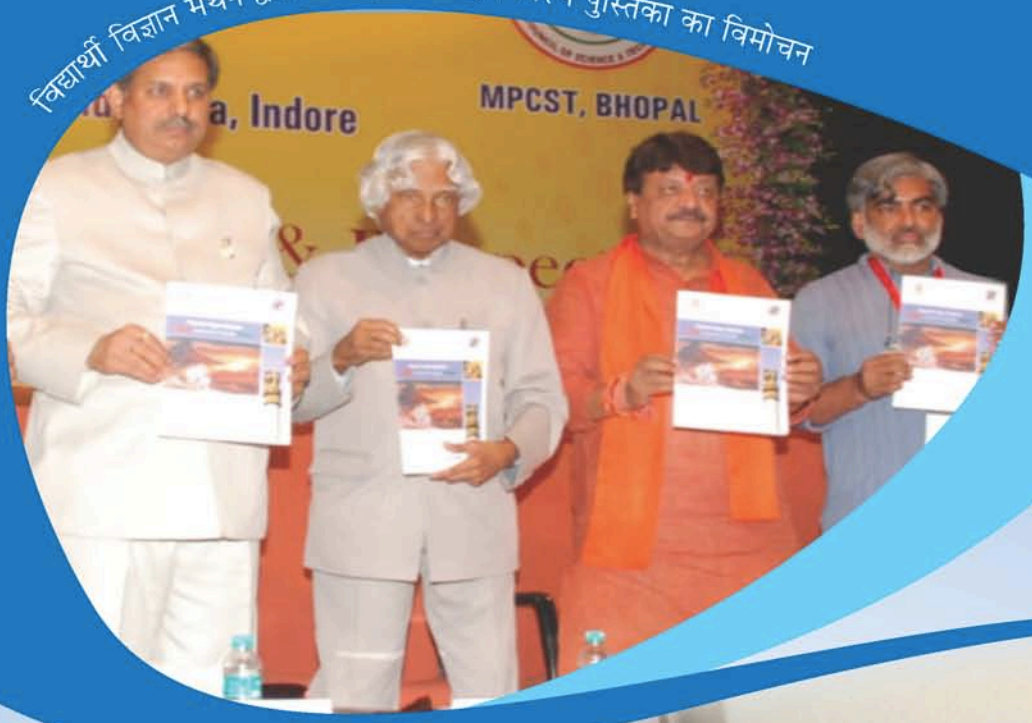

BrahMos

ब्रह्मोस एअरोस्पेस कार्पोरेशन की सीएसआर परियोजना के अधीन सहायता प्राप्त

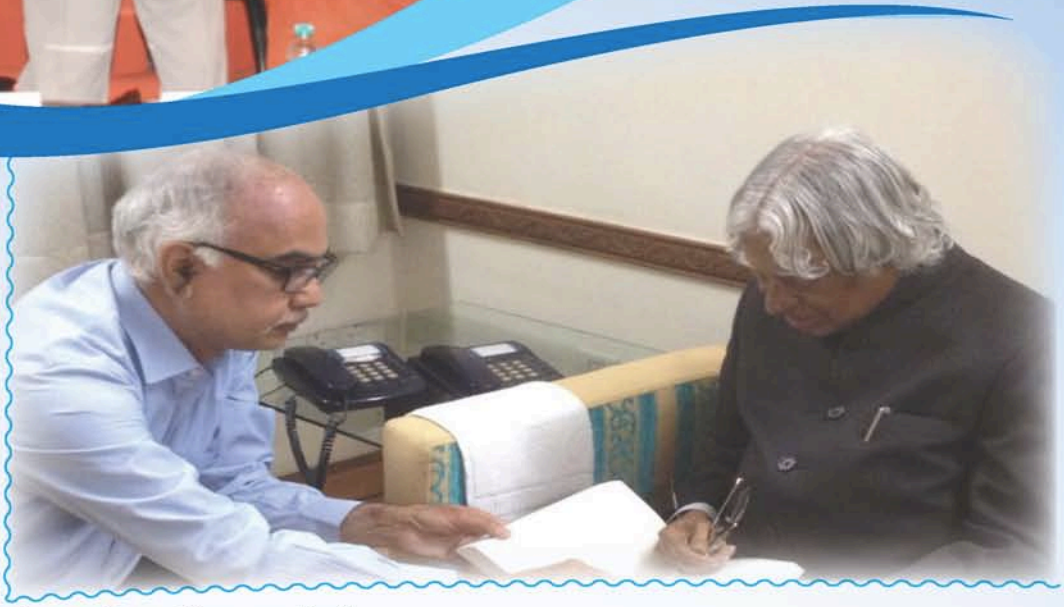

डॉ. कलाम के साथ प्रोफेसर अरुण तिवारी

किस प्रकार तामिलनाडू के पमबन द्वीप के मछुआरे का बेटा भारत का राष्ट्रपति बन गया? उसके शिक्षक कौन थे? उनकी शिक्षा क्या थी? वे क्या चीज़ें थीं जो एक बालक के रूप में उन्होंने पढ़ीं और जिसने उनके वैज्ञानिक स्वभाव को उत्तेजित कर दिया? समूद्र के किनारे बीते शांत बचपन से लेकर भारत के प्रमुख प्रक्षेपात्र वैज्ञानिक और अन्ततः देश के राष्ट्रपति बनने की यात्रा को उनके ही शब्दों में पढ़िए।

यह किताब सभी आयु वर्ग के पाठकों के लिए दिलचस्प और प्रेरक है। यह पाठकों में कठिन परिश्रम की जरूरत तथा अन्तर्दष्टि के साथ उसके प्रदर्शन के महत्व की शिक्षा देती है।

सहायता प्राप्तः

₹ 250.00

कवर फोटोग्रॉफः गेटी इमेजेज़

Turtle Books Private Limited

B-48, Sec-59, Noida - 201301
info@turtlepub.in